गंगा-पुस्तकमाला का इक्कीसवाँ पुष्प

भिखारी से भगवान्

[अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध लेखक जेम्स एलेन-कृत From Poverty to Power-नामक नीति-विषयक पुस्तक का अनुवाद]

अनुवादक
ठा० बाबूनंदनसिंह

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सजिल्द १।)] १९५० [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

लेफ्टिनेंट राजा दुर्गानारायणसिंहजू देव

(तिर्वा-नरेश)

Ganga Fine Art Press, Lucknow

हिंदी, हिंदू और हिंदुस्थान के प्रेमी तथा भक्त,

अशेष गुण-संपन्न, स्वनामधन्य, श्रद्धेय

श्रीयुत लेफ्टिनेंट

राजा दुर्गानारायणसिंहजूदेव के

कर-कमलों में

उनके भक्त अनुवादक द्वारा

सादर समर्पित

प्राक्कथन

मैंने संसार पर दृष्टि डाली, तो उसको चारो ओर शोक से घिरा और दुःख की भयंकर ज्वाला में भुना हुआ पाया ! मैंने कारण की खोज की। मैंने चारो तरफ़ देखा, परंतु कारण का पता मुझे न चला। मैंने पुस्तकों को देखा, पर वहाँ भी पता न मिला। फिर मैंने जो अपने अंदर टटोला, तो मुझको वहीं पर कारण और साथ ही उस कारण के उत्पन्न होने की असलियत का भी पता चल गया। मैंने फिर जो आँख गड़ाकर ज़रा और गहराई तक देखा, तो मुझको उसका प्रतिकार अथवा ओषधि भी मालूम हो गई। मुझको मालूम हुआ कि एक ही नियम है, और वह प्रेम का नियम है; एक ही जीवन है, और वह इस नियम के अनुकूल अपने को बनाना है; और एक ही सत्य है, और वह सत्य है अपने मस्तिष्क अथवा मन पर विजय प्राप्त करना और अपने हृदय को शांत तथा आज्ञाकारी रखना। मैंने एक ऐसी पुस्तक लिखने का स्वप्न देखना आरंभ किया, जो इस बात में धनी, भिखारी, शिक्षित, अशिक्षित, सांसारिक तथा असांसारिक सभी की सहायता कर सके, जिसमें वह अपने ही अंदर समस्त प्रसन्नता के भंडार, पूर्ण सत्य तथा सर्वसिद्धि का अनुभव कर सके। मुझमें यह विचार स्वप्न-स्वरूप बना रहा और अंत में प्रौढ़ हो गया। अब मैं इसको संसार में इस इच्छा से भेजता हूँ कि यह वहाँ जाकर मनुष्यों के दुःख हरने तथा उनको सुखी बनाने का अपना उद्देश पूरा कर सके। मैं जानता हूँ कि यह उन समस्त कुटुंबों तथा हृदयों में पहुँचने से बाज़ नहीं आ सकता, जो इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और इसको अपनाने के लिये तैयार बैठे हैं।

जेम्स एलेन

भूमिका

आजकल भूमिका लिखने की ऐसी चाल चल पड़ी है कि लोग भूमिका के ऊपर भी भूमिका लिखने लग गए हैं; यहाँ तक कि कभी-कभी तो पुस्तकों के आकार के बराबर ही उनकी भूमिका भी देखने में आती है। ऐसा होना भी अप्राकृतिक नहीं; क्योंकि लिखने में ही नहीं, बल्कि संसार के सभी व्यवहारों में यदि अच्छी तमहीद गँठ गई, बढ़िया भूमिका बँध गई, तो आधे से अधिक काम निकल जाता है। वही "Well begun is half done" की कहावत चरितार्थ होती है। यही कारण है कि जहाँ देखिए, वहाँ भूमिका का बाज़ार गर्म है। खाने में भूमिका, पीने में भूमिका, सोने में भूमिका, कहाँ तक कहूँ, मरने में भी भूमिका और लंबी-चौड़ी भूमिका की आवश्यकता होती है! फिर जो चाल चल पड़ी, उसको निभाना और बरतना भी तो बड़ा ही आवश्यक है; क्योंकि ऐसा न कर आप नक्कू बनना ठीक नहीं।

सुतरां मैं भी अपनी भूमिका की भूमिका बाँधकर आगे बढ़ता हूँ और सबसे पहले यह बतला देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इस पुस्तक के लिखने में मेरा अभिप्राय क्या रहा है। धन कमाना पहला, नाम तथा ख्याति पैदा करना दूसरा और हिंदी-साहित्य तथा हिंदी-प्रेमियों की थोड़ी-बहुत सेवा करना तीसरा, यही तीनो मेरे प्रधान उद्देश रहे हैं। परंतु मेरे उद्देश्यों की पूर्ति सोलह आने में सवा सोलह आने नहीं, तो कम-से-कम पौने सोलह आने तो अवश्य ही मेरे सुहृदय पाठकों के हाथ में ही है; इसलिये उनके सुबीते के लिये कहिए या

स्वयं अपने अर्थ की सिद्धि के लिये कहिए, मैं पुस्तक के मूल-रचयिता का परिचय दे देता हूँ।

पुस्तक का मूल-लेखक मैं नहीं, बल्कि सात समुद्र पार के रहनेवाले मिस्टर जेम्स एलेन (James Allen) हैं। मैं तो केवल अनुवादक हूँ। इसलिये इसमें व्यक्त तथा प्रतिपादित भावों के लिये मेरा कोई श्रेय नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि इन भावों ने मेरी बड़ी सहायता की है और मेरे संतप्त हृदय को उस समय शांति, सुख और ढारस दिया है, जिस समय मैं अपने को नीचातिनीच, परम पतित और अपने सिद्धांतों से च्युत समझकर आठो पहर चिंता-सागर में डूबा रहता था और कोई मेरी सहायता करनेवाला नज़र नहीं आता था। इन भावों ने सचमुच ही मेरी डूबती हुई नौका को बचा लिया था; और यही कारण है कि आज मैं उनको हिंदी-प्रेमियों के सामने लाने की धृष्टता करता हूँ, जिसमें वे मेरे सदृश किसी और की भी सहायता कर सकें।

जेम्स एलेन किस उच्च कोटि के सिद्धहस्त लेखक हैं, उनकी भाषा कितनी मधुर, सरल और ओजस्विनी होती है, उसमें व्यंजकता तथा लालित्य की कहाँ तक छटा दिखाई देती है, यह सब बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं। पाश्चात्य साहित्य-संसार में उनका कितना नाम और आदर है, वह भी बताने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि इससे हिंदी के प्रेमियों तथा ज्ञाताओं का कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। अगर उनका कुछ लाभ हो सकता है, तो उन उच्च भावों को अपनाने तथा उन पर चलने से, जिनका उन्होंने अपनी पुस्तकों द्वारा प्रचार किया है। और इस बात का पता कि वे भाव कैसे हैं, केवल इस अनुवाद के पढ़ने ही से चलेगा, मेरे बतलाने से नहीं। अस्तु; मैं अपने पाठकों से सविनय प्रार्थना करूँगा कि अगर अपने लिये नहीं, तो मेरे ही लिये सही, इस पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़ जायँ।

अंत में एक बात और लिखकर मैं इस पचड़े को खतम करना चाहता हूँ। वह यह है कि पहले मैं भी दूसरों की पुस्तकों का अनुवाद करना चोरी से कुछ कम नहीं समझता था; और यदि कोई मुझसे किसी पुस्तक का अनुवाद करने के लिये कहता था, तो मैं बड़ा कड़ा और रूखा जवाब देता था कि यह तो सरासर चोरी है। लोगों के बहुत कुछ कहने का भी मुझ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता था। परंतु जब मैंने देखा और समझ लिया कि संसार में ज्ञान किसी की बपौती नहीं, बल्कि उस पर सबका समान अधिकार है और उसका प्रचार करना हरएक आदमी का धर्म और कर्तव्य है, तब मुझको मालूम हो गया कि मेरी पहली धारणा कोरी उद्दंडता थी। इसके अतिरिक्त जब हम हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं, तो उसमें सब प्रकार की पुस्तकों का होना परमावश्यक है। इसलिये अगर कोई दूसरी बात न हो, तो भी इस अनुवाद की आवश्यकता निर्विवाद है।

इन्हीं विचारों को सामने रखकर मैंने अनुवाद करना आरंभ कर दिया। परन्तु अनुवाद की अनेकों कठिनाइयाँ उसी को मालूम होती हैं, जो अनुवाद करने बैठता है। सबसे पहले अनुवादक को अपने व्यक्तित्व को तिलांजलि देकर मूल-लेखक का तद्रूप रूप धारण करना पड़ता है। उसको अपनी शैली और भावों के क्रमशः प्रतिपादन, विकास और उद्घाटन के स्थान पर मूल-लेखक की शैली और भावों का अनुकरण करना होता है, जो कोई आसान बात नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना स्वतंत्र मार्ग होता है और पूर्ण सफलता के साथ वह अपने उसी मार्ग पर चल भी सकता है। इसके अतिरिक्त अनुवाद में एक सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि प्रायः एक भाषा के कुछ पारिभाषिक शब्दों को दूसरी भाषा में लाना कठिन हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि जिस भाव को एक भाषा

के ज्ञाता ने प्रकट किया, वह भाव ही अनुवादक की भाषा में नहीं होता। इसी कारण कभी-कभी तो शब्दों का अनुवाद वाक्यांशों और वाक्यों तक में करना पड़ता है और कभी-कभी एक बड़े वाक्य का भाव प्रकट करने के लिये एक ही शब्द अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त मालूम होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी वाक्य-संकोचन, संप्रसारण तथा वाक्य-वियोजन की भी शरण लेनी पड़ती है, जिसमें अक्षरशः अनुवाद के प्रयत्न में कहीं भाव का ही लोप होकर अर्थ का अनर्थ न हो जाय। यह सब कुछ केवल इसी कारण किया जाता है कि पुस्तक में व्यक्त किए हुए भावों को सरलता के साथ सर्वसाधारण हृदयंगम कर सकें। परंतु अनुवादक का यह यत्न कभी-कभी पुस्तक की मूल-भाषा के ज्ञाता को नहीं रुचता। वह प्रायः अक्षरशः अनुवाद को ही अधिक महत्त्व देता है; और अनुवादक को उसकी रुचि का भी ध्यान रखना पड़ता है। कम से-कम पुस्तक के प्रचार के ख़याल से ही उसकी राय या प्रकृति की अवहेलना नहीं की जा सकती; क्योंकि भाग्य या अभाग्य-वश आज दिन भारतवर्ष के भाग्य-विधाता अँगरेज़ी शिक्षा-प्राप्त लोग ही देखने में आलूम होते हैं। परंतु हम भारतीय समाज में भी, रुचि तथा प्रकृत्ति-भेद के अनुसार, योरपीय और भारतीय भारत (European India and Indian India) का जो दृश्य देखने में आ रहा है, वह देश तथा समाज के कार्य में अवरोधक ही नहीं हो रहा है, बल्कि उसके लिये प्राणघातक भी हो रहा है। भगवन्! इस दुःखदायी अवस्था को शीघ्र दूर करो।

भिन्न-भिन्न भाषाओं के रोज़मर्रा और मुहावरा (Common use and Idioms) तथा कहावतों में भाव-भेद का होना भी अनुवादक के लिये कोई कम कठिनाई नहीं है। सब कुछ होते हुए भी पुस्तक को सर्वसाधारण के लिये सुबोध बनाने का पूर्णतः प्रयत्न किया गया है। परंतु जिस पर भी यदि इस उद्देश की पूर्ति न हो पाई

हो, तो जो सज्जन कृपा कर अपनी सम्मति देकर अनुवादक को अनुगृहीत करेंगे, उनकी सम्मति का अगले संस्करण में आदर किया जायगा।

एक बात अवश्य है। वह यह कि कहीं-कहीं भाव की कठिनता और गुरुता के कारण कठिन शब्दों का भी प्रयोग करना पड़ा है। परंतु यह भी क्षम्य मालूम होता है; क्योंकि एक तो गूढ़-से-गूढ़ भावों को किसी भाषा में प्रकट कर देना केवल बहुत ही सिद्धहस्त लेखकों का काम हो सकता है; और वे भी केवल मौलिक ग्रंथों में ही ऐसा कर सकते हैं; अनुवाद में उनके लिये भी कठिनता पड़ती है। और दूसरे शेरनी का दूध सोने के ही घड़े में रक्खा जा सकता है, मिट्टी के घड़े में नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक को वर्तमान रूप देने में मुझको श्रीठाकुर नरसिंह-जी बी० ए० (वकवल, आज़मगढ़-निवासी) और ठाकुर प्रसिद्ध-नारायणसिंह जी से जो सहायता मिली है, उसके लिये मैं अपना हार्दिक धन्यवाद प्रकट किए विना नहीं रह सकता। साथ-ही-साथ इन सुहृद्वरों के प्रोत्साहन के लिये भी मैं अपने को आभारी समझता हूँ; क्योंकि उससे भी मुझको बहुत कुछ सहायता मिली है। अंत में मैं श्रीयुत लेफ्टिनेंट राजा दुर्गानारायणसिंहजू देव तिरवाधीश के प्रति, जिनकी कीर्ति का सूर्य दिन-पर-दिन आकाश-मंडल में चढ़ता जा रहा है, अपनी हार्दिक कृतज्ञता सविनय प्रकट करना चाहता हूँ; क्योंकि यह उन्हीं की कृपा का फल है कि यह पुस्तक इतनी शीघ्र और इस सुंदर रूप में प्रकाशित हो सकी है। एक बात और है, जो मैं कहना तो नहीं चाहता था, परंतु कहे विना रहा भी नहीं जाता। वह यह कि जो कुछ इस पुस्तक के संबंध में या अन्य स्थानों में मैं कर पाया या पाता हूँ, वह सब कुछ अपने परम पूज्य श्रद्धास्पद क्षत्रिय-कुल-भूषण वैशवंशावतंस स्वामी

की असीम उदारता, अमूल्य उपदेश और अगाध वात्सल्य प्रेम का ही प्रसाद है, जिसके लिये लेखनी उनको धन्यवाद देने में असमर्थ है।

आत्मीय मंत्री-कार्यालय,
रामविलास, कुरीं सुदौली, रायबरेली

विनीत—
अनुवादक

पहला भाग

सफलता का रहस्य

भिखारी से भगवान्

पहला अध्याय

बुराइयों से शिक्षा

अशांति, दुःख और चिंता जीवन की छाया हैं। सारे संसार में ऐसा कोई हृदय नहीं, जिसे दुःख-डंक का अनुभव न करना पड़ा हो; ऐसा कोई मन नहीं, जिसे कष्ट के कृष्ण सागर में ग़ोता न लगाना पड़ा हो, ऐसा कोई नेत्र नहीं, जिसको अवर्णनीय मनःसंताप के कारण संज्ञाहीन करनेवाली उष्ण अश्रु-धारा न बहानी पड़ी हो; ऐसा कोई कुटुंब नहीं, जिसमें प्रबल विनाशकारी रोग तथा मृत्यु का प्रवेश न हुआ हो—हृदय को हृदय से पृथक् न होना पड़ा हो, और सबके ऊपर दुःख के काले बादल न घिर आए हों। बुराइयों के प्रौढ़ तथा देखने में अक्षय फंदों में सभी न्यूनाधिक जकड़े हुए पड़े हैं। मनुष्य दुःख, अप्रसन्नता तथा अभाग्य से प्रतिक्षण घिरा रहता है।

आच्छन्नकारी अंधकार से बचने तथा किसी प्रकार उसको घटाने के अभिप्राय से नर-नारी अंधे होकर असंख्य उपायों और मार्गों की शरण लेते हैं; परंतु इस प्रकार उनकी अनंत सुख-प्राप्ति की आशा व्यर्थ है। इंद्रियों की उत्तेजना में सुख का अनुभव करनेवाले शराबी और वेश्यागामी ऐसे ही होते हैं। वह एकांत-निवासी रागी भी ऐसा ही होता है, जो एक ओर तो अपने को दुःखों से दूर रखना चाहता है, और दूसरी ओर क्षणिक शांतिदायिनी तथा सुखदायिनी साम-ग्रियों से अपने को परिवेष्टित करता जाता है। वह मनुष्य भी इसी

प्रकार का होता है, जो द्रव्य तथा कीर्ति का लोलुप होता है और इन्हीं की प्राप्ति में संसार की समस्त वस्तुओं को तिलांजलि दे देता है। धार्मिक यज्ञ करके शांति-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों की भी गणना इसी श्रेणी में होती है।

वाञ्छित शांति सबको निकट आती प्रतीत होती है और अल्प-काल के लिये आत्मा भी अपने को सुरक्षित समझकर बुराइयों के अस्तित्व की विस्मृति-जन्य प्रसन्नता में पागल-सी हो जाती है, परंतु अंत को दुःख-दिवस आ ही जाता है या अरक्षित आत्मा पर किसी बड़े शोक, प्रलोभन या विपत्ति का हठात् आक्रमण हो ही जाता है, जिसके कारण आत्मा का काल्पनिक शांति-भवन चकनाचूर होकर नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार व्यक्तिगत प्रसन्नता के ऊपर दुःख की प्रखर तलवार लटकती रहती है, जो ज्ञान से अपनी रक्षा न करनेवाले मनुष्य के ऊपर किसी समय गिरकर उसकी आत्मा को व्यथित कर सकती है।

शिशु युवा अथवा युवती होने के लिये चिल्लाता है; पुरुष तथा स्त्री बचपन के खोए हुए सुखों के लिये दीर्घ श्वास लेते हैं। दरिद्र धनाभाव की ज़ंजीरों से जकड़ा होने के कारण दर्द-भरी साँस लेता है, और धनी प्राय भिखारी हो जाने की आशंका में ही जीवन बिताता या संसार की उस भ्रमोत्पादक छाया की खोज में अपना समय व्यर्थ टाल-मटोल करके बिताता है, जिसको वह सुख बतलाता या समझता है। कभी-कभी आत्मा समझने लग जाती है कि किसी विशेष धर्म को ग्रहण करने तथा किसी ज्ञान-दर्शन को अपनाने या किसी काल्पनिक उच्च आदर्श का निर्माण करने ही में मुझको अभंग शांति और सुख की प्राप्ति हो गई। परंतु कोई प्रबल प्रलोभन उसे पराजित कर यह प्रतिपादित कर देता है कि वह धर्म अनुपयुक्त और अपर्याप्त है। यह भी पता चल जाता है कि

यह काल्पनिक तत्व-ज्ञान एक अनुपयोगी सहारा है, और एक ही क्षण में वह आदर्श का स्तंभ, जिस पर भक्त वर्षों से अपने प्रयत्नों का लक्ष्य रखता आया है, टूटकर उसके पैरों के नीचे आ जाता है।

तो क्या दुःख और शोक से बचने का कोई मार्ग ही नहीं? क्या कोई ऐसा उपाय ही नहीं, जिसके द्वारा बुराइयों की ज़ंजीर तोड़ी जा सके? क्या स्थायी सुख, अनंत शांति तथा सुरक्षित सिद्धि केवल अविवेकमय स्वप्न हैं? नहीं, एक मार्ग है, जिसे बतलाने में मुझे आनंद होता है, और जिसके द्वारा बुराइयों का सर्वनाश किया जा सकता है। एक साधन है, जिसके द्वारा दुःख, दरिद्रता, रोग तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को हम भगाकर ऐसी जगह भेज सकते हैं, जहाँ से वे कभी लौट नहीं सकते। एक ऐसी प्रणाली है, जिसके द्वारा स्थायी संपन्नता की प्राप्ति हो सकती है, और उसी के द्वारा आपदा के पुनः आक्रमण की आशंका भी मिटाई जा सकती है। अनंत तथा अभग्न शांति और सुख की प्राप्ति तथा अनुभव के लिये भी एक अभ्यास है। और, जिस समय आपको बुराइयों की वास्तविकता का ठीक ज्ञान हो जायगा, उसी समय आप उस आनंददायी अनुभव के मार्ग के एक सिरे पर पहुँच जायँगे।

बुराई को बुराई न मानना या उसकी उपेक्षा तथा अवहेलना करना ही पर्याप्त नहीं। उसको समझने की भी आवश्यकता है। ईश्वर से प्रार्थना करना कि वह अवांछित अथवा अप्रिय अवस्था को नष्ट कर दे, काफ़ी नहीं। आपको यह भी जानना चाहिए कि उसके अस्तित्व के कारण क्या हैं, और उससे आपको क्या शिक्षा मिल सकती है।

जिन ज़ंजीरों में आप जकड़े हुए हैं, उन पर दाँत पीसने, उनको कोसने और बुरी बतलाने से कोई लाभ नहीं। आपको यह जानना चाहिए कि आप क्यों और कैसे बँधे हैं। इसलिये आपको अपने से

परे हो जाना तथा अपनी परीक्षा करके अपने को समझना आरंभ कर देना चाहिए। अनुभव के शिक्षा-भवन में एक अनाज्ञाकारी बालक की तरह विचरना आपको छोड़ देना चाहिए और सुशील बनकर धैर्य-पूर्वक यह सीखना आरंभ कर देना चाहिए कि आपको उन्नत तथा अंत में सिद्धावस्था को प्राप्त होने के लिये कौन-कौन-सी शिक्षाएँ मिल सकती हैं, क्योंकि जिस समय मनुष्य बुराई को ठीक तौर से जान जाता है, उस समय फिर विश्व में वह बुराई अपरिमित शक्ति या आदि-कारण नहीं रह जाती, बल्कि वह मनुष्य के अनुभव में एक बीत जानेवाली अवस्था-मात्र ही शेष रह जाती है, और शिक्षाग्राहियों के लिये अध्यापक का काम देती है। बुराई आपके बाहर की कोई अमूर्त वस्तु नहीं, बल्कि वह आपके हृदय का एक अनुभव-मात्र है। धैर्य के साथ हृदय की परीक्षा और शुद्ध करके आप क्रमशः बुराई के आदि तथा वास्तविक रूप को पहचान सकते हैं, जिसका निश्चित परिणाम यह होगा कि बुराई जड़-मूल से नष्ट हो जायगी।

सारी बुराइयाँ दूर और ठीक की जा सकती हैं। इसलिये विषयों के वास्तविक स्वभाव तथा पारस्परिक संबंध के बारे में जो अज्ञान फैला हुआ है, वही उसका मूल कारण है, और जब तक यह अज्ञानावस्था बनी रहेगी, तब तक हम भी उन्हीं बुराइयों के शिकार बनते रहेंगे।

विश्व की कोई बुराई ऐसी नहीं, जो अज्ञानता का फल न हो और जो, यदि हम उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिये तत्पर और तैयार हो जायँ तो, हमको उच्च ज्ञान की प्राप्ति न करा सके और उसके बाद अंत में स्वयं नष्ट न हो जाय। परंतु मनुष्य उन्हीं बुराइयों में पड़ा सड़ा करता है। उन बुराइयों का नाश भी नहीं होता, क्योंकि जो शिक्षाएँ देने के लिये उन बुराइयों का आविर्भाव हुआ था, उनको

ग्रहण करने के लिये मनुष्य तत्पर और इच्छुक नहीं। मैं एक बालक को जानता हूँ, जो प्रत्येक रात्रि को, जब उसकी माता उसको चार-पाई पर ले जाती थी, मोमबत्ती के साथ खेलने के लिये रोया करता था। एक दिन रात्रि को जब माता क्षण-भर के लिये दूर चली गई, तो बालक ने मोमबत्ती को पकड़ लिया। उसका अनिवार्य फल प्राप्त होने पर फिर बालक ने मोमबत्ती के साथ खेलने की कभी इच्छा नहीं की। एक ही बार अवज्ञा करके वह आज्ञाकारी होने का पाठ भली भाँति सीख गया और उसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया कि अग्नि जलाती है। यह घटना समस्त पापों और बुराइयों के स्वरूप, अभिप्राय और अंतिम फल का ठीक उदाहरण है। जिस तरह बालक को अग्नि के वास्तविक गुण की अज्ञानता के कारण कष्ट उठाना पड़ा, उसी तरह प्रत्येक वयोवृद्ध, किंतु अनुभव की दृष्टि से बालक, को भी उन वस्तुओं के असली स्वभाव के न जानने के कारण दुःख उठाना पड़ता है, जिनके लिये वह रोया करता है और बराबर प्रयत्न करता रहता है, और जो प्राप्त होकर उसको कष्ट पहुँचाती हैं। इन दोनो में अंतर केवल इतना ही है कि बुड्ढे-बालकों की दशा मे अज्ञानता और बुराइयों की जड़ अधिक गहरी और अस्पष्ट होती है। सदा बुराई की उपमा अंधकार से और भलाई की उजाले से दी जाती है, और इन संकेतों के गर्भ में इनकी पूर्ण व्याख्या तथा वास्तविकता छिपी हुई है; क्योंकि जिस तरह प्रकाश समस्त विश्व को सदैव प्रकाशित करता है और अंधकार केवल एक चिह्न या विश्व पर पड़ी हुई छाया है, जो किसी वस्तु के बीच में आ जाने या प्रकाशमय वस्तु की कुछ किरणों को रोक लेने से उत्पन्न होती है, ठीक उसी तरह अत्यंत कल्याणकारी का प्रकाश ही वास्तविक और जीवन-प्रदायिनी शक्ति है, जो त्रिभुवन में व्याप रही है। और, बुराई एक तुच्छ छाया है, जो आत्मा के बीच में आ

जाने से कल्याणकारी की प्रवेशार्थ प्रयत्नशील प्रकाशमय किरणों के अवरुद्ध हो जाने पर इस विश्व पर पड़ा करती है। जब रात्रि अपने अभेद्य आवरण से भूमंडल को ढक लेती है, तब चाहे जितना अंधकार हो, वह हमारे छोटे-से ग्रह (भूमंडल) के अर्द्ध-भाग अर्थात् केवल थोडे-से स्थान को ही ढक पाती है और समस्त विश्व सजीव प्रकाश से प्रकाशित रहता है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि प्रातःकाल होने पर मैं फिर प्रकाश में ही जागूँगा। अस्तु, आपको जान लेना चाहिए कि जब शोक, दुःख और विपत्ति की अँधेरी रात्रि आपकी आत्मा के ऊपर अपना सिक्का जमा लेती है और आप अनिश्चित और थके पाँवों से इधर-उधर लड़खड़ाते फिरते हैं, तो आप अपनी आत्मा और आनंद या सुख के प्रकाश के बीच में अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को डाल रहे हैं; और जो अंधकारमय छाया आपको ढके हुए है, उसके बढ़ने का कारण कोई दूसरा नहीं, बल्कि स्वयं आप ही हैं। जैसे बाहर अंधकार केवल एक झूठी छाया और असार पदार्थ है, जो न तो कहीं से आता है और न कहीं जाता है, जिसका कोई ठीक या निश्चित स्थान नहीं, ठीक वैसे ही भीतरी अंधकार एक अभावात्मक छाया है, जो प्रकाश-जन्य तथा विकसित होती हुई आत्मा के ऊपर से गुज़रती है।

मुझे ख़याल होता है कि मैं किसी को यह कहते हुए सुन रहा हूँ कि "तब फिर बुराइयों के अंधकार में होकर क्यों निकला जाय?" इसका उत्तर यही है कि अज्ञानता के कारण आपने ऐसा करना पसंद किया है और ऐसा करने से आप भलाई और बुराई दोनों को अच्छी तरह समझ सकते हैं; और फिर अंधकार में होकर जाने से आप प्रकाश के गुण को और भी अधिक समझेंगे। अज्ञानता का सीधा परिणाम दुःख होता है, इसलिये यदि दुःख की शिक्षाओं को पूर्णतया हृदयंगम कर लिया जाय, तो अज्ञानता दूर हो जाती है

और उसके स्थान पर ज्ञान का समावेश हो जाता है। लेकिन जिस तरह एक अनाज्ञाकारी बालक पाठशाला में पाठ याद करने से इनकार करता है, उसी तरह यह भी संभव है कि अनुभव से शिक्षा ग्रहण करने से मुँह मोड़ा जाय और इस तरह लगातार अंधकार में रहकर आनेवाला (आवर्तक) दंड बार-बार रोग, निरुत्साह और चिंता के रूप में भोगना पड़े। इसलिये जो व्यक्ति अपने को आप कठिनाइयों के पाश से मुक्त करना चाहता है, उसको सीखने और उस नियम-बद्ध मार्ग पर चलने के लिये राज़ी और तत्पर रहना चाहिए, जिसके बिना रत्ती-भर भी ज्ञान या स्थायी सुख और शांति नहीं प्राप्त हो सकती।

कोई मनुष्य अपने को एक अंधकारमय कमरे में बंद करके यह बात कह सकता है कि प्रकाश नहीं है। परंतु प्रकाश बाह्य जगत् में प्रत्येक स्थान पर होगा और अंधकार केवल उसके छोटे-से कमरे में ही होगा। इसलिये आप सत्य के प्रकाश को रोक सकते हैं या उन धारणाओं, इच्छाओं और त्रुटियों की दीवारों को नष्ट करना आरंभ कर सकते हैं, जिनसे आपने अपने को आच्छादित कर रक्खा है और इस भाँति उस आनंददायी, सर्वव्यापी प्रकाश को अपने अंदर स्थान दे सकते हैं।

सच्ची नियत से आत्म-परीक्षा करके अनुभव करने का प्रयत्न कीजिए, और इसे केवल एक सिद्धांत की बात न मान लीजिए कि बुराई तो एक चली जानेवाली अवस्था है या स्वयं पैदा की हुई छाया है। बल्कि आपके सब दुःख, शोक और विपत्तियाँ आप पर निश्चित और बिलकुल ठीक नियम के अनुसार आई हैं, और वे इसलिये आई हैं कि आप उन्हीं के योग्य थे और आपको उन्हीं की आवश्यकता थी, जिसमें पहले आप उनको बरदाश्त करें और फिर उनको समझकर और भी शक्तिशाली, बुद्धि-संपन्न तथा योग्य बन सकें। जब आप

पूर्णतः यह अनुभव प्राप्त कर लेंगे, तो आप उस अवस्था में पहुँच जायँगे, जिसमें आप अपनी परिस्थितियों को स्वयं बना या बिगाड़ सकें, तमाम बुराइयों को भलाइयों में परिवर्तित कर सकें और सिद्ध-हस्त होकर अपने भाग्य-भवन का निर्माण कर सकें।

पद्य का अनुवाद

ऐ संतरी! रात्रि की क्या दशा है? क्या अब तू पहाड़ों की चोटियों पर जगमगाती हुई प्रभा की किरणों को देख रहा है? सुनहली, ज्ञान के प्रकाश की अग्रगामी किरणें अब भी पहाड़ों की चोटियों पर पड़ीं या नहीं?

वह अग्रगामी अब भी अंधकार और उसके साथ ही रात्रि के समस्त राक्षसों को भगाने के लिये आ रहा है या नहीं? अब भी उसकी चुभनेवाली किरणों का तीर तेरे नेत्रों पर पड रहा है या नहीं? तू अब भी उसकी आवाज़ या त्रुटियों के नष्ट-प्राय भाग्य की चिल्लाहट सुन रहा है या नहीं?

ऐ प्रकाश को प्यार करनेवाले! सवेरा हो रहा है और इस समय भी पहाड़ों की भृकुटी पर उसकी सुनहली किरणें पड रही हैं। अब भी धुँधले प्रकाश में मैं वह मार्ग देख रहा हूँ, जिस पर होकर उसके चमकते हुए पाँव रात्रि की ओर बढ़ रहे हैं।

अंधकार दूर हो जायगा और रात्रि के साथ ही सदैव के लिये उन समस्त वस्तुओं का भी, जो अंधकार से प्यार और प्रकाश से घृणा करती हैं, लोप हो जायगा। इसलिये ख़ुशी मना, क्योंकि वह शीघ्रता से आगे आता हुआ राजदूत ऐसा ही गा रहा है।

दूसरा अध्याय

संसार अपनी ही मानसिक दशा का प्रतिबिंब है

जैसे आप हैं, वैसा ही आपका संसार भी है। विश्व की प्रत्येक वस्तु का समावेश स्वयं आपके आंतरिक अनुभव में हो जाता है। इससे कुछ मतलब नहीं कि बाह्य जगत् में क्या है ; क्योंकि यह सारी आपकी ही चेतनावस्था की छाया है। आपकी आंतरिक अवस्था पर ही सब कुछ निर्भर है , क्योंकि बाह्य जगत् की प्रत्येक वस्तु पर वही रंग चढेगा और वह आपको वैसी ही दृष्टिगोचर होगी, जैसे आप हैं।

जो कुछ आप निश्चित रूप से जानते हैं, उसका समावेश आपके अनुभव में हो जाता है, जो कुछ आप कभी जानेंगे, वह भी आपके अनुभव-द्वार से ही प्रवेश करेगा और इस प्रकार आपका अंग बन जायगा।

आपके ही विचारों, वाञ्छनाओं और उच्च अभिलाषाओं से आपकी सृष्टि निर्मित होती है, और आपके लिये संसार में जो कोई सुंदर आनंददायिनी और सुखदायिनी अथवा कुरूपा, दुःखदायिनी और शोकप्रद वस्तु है, वह आपके ही अंदर भरी हुई है। अपने ही विचारों से आप अपने जीवन, जगत् और विश्व को बनाते या बिगाड़ते हैं। जैसा कि आप अपनी विचार-शक्ति से अपना भीतरी भवन निर्माण करेंगे, आपका बाह्य जीवन और परिस्थितियाँ वैसा ही रूप धारण करेंगी। जिस किसी वस्तु को आप अपने हृदय के अंदर स्थान देंगे, वही देर-सवेर प्रति-घात के अनिवार्य नियमानुसार आपके बाह्य जीवन में वैसा ही रूप

धारण कर लेगी। वह आत्मा, जो अपवित्र, दूषित और स्वार्थ-पूर्ण है, अभ्रांत निश्चय के साथ विपत्ति और दुष्परिणाम की ओर झुकती जाती है, और जो आत्मा पवित्र, स्वार्थ-रहित और उच्च है, वह उसी तरह से सुख और आनंद की ओर अग्रसर होती जाती है। प्रत्येक आत्मा स्वजातीय को ही अपनी ओर आकृष्ट करती है, और जिसका उससे संबंध नहीं, वह संभवतः कभी उसकी ओर नहीं आ सकता। इसका अनुभव करना पवित्र ईश्वरीय नियम की व्यापकता को मानना है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन की घटनाएँ, जो उसके बनाने और बिगाड़नेवाली होती हैं, उसके आतरिक विचार-जगत् के गुण और शक्ति द्वारा उसकी ओर खिंच आती हैं। प्रत्येक आत्मा सगृहीत विचारों तथा अनुभवों का एक विषम मिश्रण होती है, और काया तो केवल उसके अवभास के लिये एक सामयिक शकट-मात्र है। इसलिये जैसे आपके विचार हैं, वैसी ही आपकी वास्तविक आत्मा भी है। और, आपके विचारों के अनुसार ही आपका समीपवर्ती ससार— चाहे वह जीवधारी हो या निर्जीव—रूप धारण करेगा। जो कुछ हम हैं, वह केवल अपने विचारों का फल है। उसकी बुनियाद हमारे विचारों पर है और वह हमारे विचारों से ही उत्पन्न भी हुआ है। यही बात बुद्ध भगवान् ने कही थी। इसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि अगर कोई व्यक्ति सुखी है, तो इसका कारण यह है कि वह सुखदायी विचारों में ही रहता है; और अगर वह दुःखी है, तो नैराश्यमय तथा शिथिल विचारों में ही वह डूबा रहता है। चाहे कोई भयभीत हो या निर्भय, बुद्धिमान् या मूर्ख, विक्षिप्त हो या शात, उसकी अवस्था या अवस्थाओं का कारण उसकी आत्मा के अंदर ही रहता है, कभी उससे बाहर नहीं रहता। अब मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि मैं बहुत-से लोगों की एक ध्वनि

से चिल्लाकर यह कहते सुन रहा हूँ कि "तो क्या वास्तव में आपके कहने का यह अर्थ है कि बाह्य परिस्थितियों का मस्तिष्क पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता?" मैं यह तो नहीं कहता; परंतु यह अवश्य कहता हूँ, और इसको अभ्रांत सत्य भी समझिए कि परिस्थितियों का आप पर उसी सीमा तक प्रभाव पड़ेगा, जिस सीमा तक आप उनका प्रभाव पड़ने देंगे। आप घटनाओं की धारा में बह जाते हैं, जिसका कारण यह है कि आपको विचार के उपयोग और शक्ति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं। आपका विश्वास है (और इसी छोटे-से शब्द 'विश्वास' पर हमारा सारा सुख और दुःख निर्भर है) कि बाह्य जगत् की बातें हमारे जीवन को बनाने या बिगाड़ने की शक्ति रखती हैं। ऐसा करने से आप उन्हीं बाह्य परिस्थितियों के सामने झुकते हैं—आप इस बात को मानते हैं कि आप उनके दास हैं, और वे बिना शर्त के आपकी स्वामिनी हैं। ऐसा कहने से आप उनको वह शक्ति प्रदान करते हैं, जो स्वयं उनमें उपस्थित नहीं हैं। आप वास्तव में केवल उन परिस्थितियों के सामने सिर नहीं झुकाते, बल्कि उस चिंता या प्रसन्नता, डर या निर्भीकता, शक्ति या निर्बलता के सामने आपको झुकना पड़ता है, जिन्हें आपके विचार-जगत् ने उनके चारो ओर प्रस्तुत कर दिया है।

मैं दो ऐसे मनुष्यों को जानता हूँ, जो जीवन-काल के आरंभ में ही वर्षों की कष्ट से बचाई हुई संपत्ति खो बैठे थे। उनमें से एक बहुत ही दुःखित हुआ और बिलकुल निराश और पागल हो गया। दूसरे ने प्रातःकाल के समाचार-पत्र में यह पढ़कर कि वह बैंक जिसमें उसने रुपया जमा किया था, नितांत निष्फल हुआ और उसका सर्वस्व नष्ट हो गया, शांति-पूर्वक दृढ़ होकर कहा—"ठीक है, अब तो यह हाथ से निकल ही गया। शोक और व्यथा से पुन: प्राप्त नहीं हो सकता, परंतु कठिन परिश्रम से हो सकता है।" वह अपने

में नवीन शक्ति का संचार कर काम पर गया और शीघ्र ही धनाढ्य बन गया। साथ-ही-साथ पहला मनुष्य जो अपनी द्रव्य-हानि पर छाती पीटता और अपने दुर्भाग्य को कोसता था, विपत्ति का आखेट और खिलौना बना रहा। विपत्ति का क्यों, वास्तव में अपने निर्बल और गुलामी के विचारों का शिकार बना रहा। धन की हानि एक के लिये तो विपत्ति का कारण हुई और दूसरे के लिये परमानंद की बात हुई; क्योंकि एक ने उस घटना को अंधकारमय और निराशा के विचारों का जामा पहनाया, और दूसरे ने उस घटना को शक्ति, आशा और नवीन उद्योग के भावों के आवरण से ढक दिया।

अगर परिस्थितियों में सुख-दुःख पहुँचाने की शक्ति होती, तो वे सब मनुष्यों को एक ही तरह सुखी और दुखी बनातीं। परंतु एक ही परिस्थिति का भिन्न-भिन्न मनुष्यों के लिये अच्छा या बुरा प्रमाणित होना यह बात सिद्ध करता है कि भलाई-बुराई करने की शक्ति उस घटना-चक्र में नहीं है, बल्कि उस मनुष्य के मस्तिष्क में है, जिसको उसका सामना करना है। जब आप इस बात का अनुभव करने लगेंगे, तो आप अपने विचारों पर शासन करने और अपने मस्तिष्क को नियम-बद्ध तथा व्यवस्थित बनाने लगेंगे और अपने अंतःकरण के पवित्र मंदिर से समस्त अनुपयोगी और अनावश्यक पदार्थों को निकालकर फिर से उसका सृजन आरंभ कर देंगे। उस समय आप अपने अंदर केवल प्रसन्नता और शांति, शक्ति और जीवन, दया और प्रेम, सौंदर्य और अमरत्व के ही भावों का समावेश होने देंगे। जिस समय आप ऐसा करेंगे, आप प्रसन्न, शांतचित्त, शक्तिशाली, स्वस्थ, दयावान्, प्रेमी और अमरत्व के सौंदर्य से सुंदर बन जायँगे।

जिस प्रकार हम घटनाओं को केवल अपने विचारों के पर्दे से

ढक देते हैं, उसी प्रकार हम प्रकाश्य जगत् के पदार्थों को भी, जो हमारे चारो ओर हैं, अपने ही विचारों से आच्छादित कर देते हैं; और जिस स्थान पर एक को एकता और सौंदर्य दिखलाई देता है, वहीं दूसरे के लिये कुरूपता का बीभत्स दृश्य दिखाई देता है। एक उत्साही प्रकृति का उपासक एक दिन देहात में अपनी प्रकृति के अनुकूल पदार्थों की खोज में घूम रहा था। घूमते-घूमते वह एक खलिहान के निकट खारे पानी के एक तालाब में पहुँच गया। जब वह एक छोटे-से बर्तन को सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षार्थ जल मे भरने जा रहा था, तो वह पास खड़े एक अशिक्षित बालक से, जो एक हलवाहे का लड़का था, उस तालाब की असंख्य गुह्य और आश्चर्य-जनक बातों पर बुद्धि से काम न लेकर उत्साह-पूर्वक वार्तालाप करने लगा। अंत में उसने अपना भाषण यह कहकर समाप्त किया कि "हाँ, ऐ मेरे प्यारे मित्र, इस तालाब में, अगर हमारे पास उनके जानने के लिये बुद्धि और यन्त्र हो, तो सैकड़ो नहीं, बल्कि लाखों विश्व पड़े हुए हैं।" इसका उत्तर उस तत्त्व-ज्ञान-रहित बालक ने कुछ सोचते हुए यों दिया—"मैं जानता हूँ कि तालाब मे मेंढक भरे पड़े हैं, लेकिन वे आसानी से पकड़े तो नहीं जा सकते!"

जहाँ प्राणिशास्त्रज्ञ (प्रकृतिवादी) ने, जिसका मस्तिष्क प्राकृतिक वस्तुओं के ज्ञान से भरा था, सौंदर्य, सुस्वरता और छिपी हुई प्रतिभा देखी, वहीं उस बालक के मस्तिष्क ने, जिसको इन विषयों का ज्ञान नहीं था, केवल कीचड़ का एक घृणोत्पादक डबरा देखा। वही जंगली पुष्प, जिसको साधारण प्राणी बिना सोचे-विचारे कुचल डालता है, विचारशील कवि के लिये अदृश्य शक्ति का देव-दूत बन जाता है। बहुतो के लिये सागर केवल जल का एक विस्तृत भंडार है, जिस पर जहाज़ चलाए जाते हैं और कभी-कभी डूब भी जाते हैं। किंतु

एक संगीतज्ञ की आत्मा के लिये वह एक जीवित पदार्थ होता है, और वह उसकी प्रत्येक परिवर्तनशील अवस्था में दैवी संगीत सुनता है। जहाँ पर साधारण मस्तिष्क को अस्तव्यस्तता और विपत्ति दिखलाई देती है, वहीं एक तत्ववेत्ता को कार्य-कारण की सर्वथा संपूर्ण यौक्तिकता दृष्टि गोचर होती है, और जहाँ पर देहात्मवादी (materialist) को कुछ भी नज़र नहीं आता, वहीं पर भावयोगी (mystic) को अनंत तथा गतिमय जीवन दिखाई देता है।

जैसे हम घटनाओं और पदार्थों को अपने विचारों से ढक देते हैं, उसी तरह हम दूसरों की आत्माओं को भी अपने विचारों का अवरण पहना देते हैं। अविश्वासी प्रत्येक को अविश्वासी समझता है। असत्यवादी अपने को इसी विचार में रक्षित रखता है कि मैं इतना बेवक़ूफ़ नहीं हूँ कि यह विश्वास कर लूँगा कि संसार में कोई ऐसा भी आदमी है, जिसको मैं बिलकुल ही सत्य-परायण पुरुष मानूँ। द्वेषी प्रत्येक हृदय में द्वेष के दर्शन पाता है। कृपण समझता है कि प्रत्येक व्यक्ति मेरा धन लेने का इच्छुक है। जिसने धन-प्राप्ति में अपने अंतःकरण की अवहेलना की है, वह बराबर अपने तकिए के नीचे रिवालवर (Revolver) रखकर सोता है; और उसका यही भ्रांति पूर्ण विश्वास रहता है कि सारा संसार ऐसे अंत:करण-हीन मनुष्यों से भरा हुआ है, जो मुझको लूटने के इच्छुक हैं। धर्म-च्युत तथा इंद्रिय-लोलुप व्यक्ति साधुओं को निरा पाखंडी समझता है। इसके विपरीत जो प्रेम-पूर्ण विचारों से अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे प्रत्येक मनुष्य को उसी भाव से परिपूर्ण समझते हैं, जिसके कारण उनका प्रेम और उनकी सहानुभूति उत्तेजित होती है। विश्वसनीय ईमानदार को अविश्वास नहीं सताता। सत्स्वभाववाले तथा दयावान्, जो दूसरों के सौभाग्य पर प्रसन्न होते हैं, मुश्किल से जानते हैं कि द्वेष क्या वस्तु है। जिसने दैवी आत्मा का अपने में अनुभव कर लिया है, वह समस्त जीवों में, यहाँ तक कि

पशुओं में भी, अपने को उपस्थित मानता है। अपनी मानसिक प्रवृत्ति में नर-नारी सभी दृढ़ हो जाते हैं, जिसका कारण यही है कि कार्य-कारण के अनिवार्य नियमानुसार वे उन्हीं भावों और चीज़ों को अपनी ओर आकृष्ट होते हुए पाते हैं, जिनको बाहर भेजते हैं। इस प्रकार उनका संपर्क उन्हीं मनुष्यों से होता है, जो उनके ही समान होते हैं। इस प्राचीन कहावत का असल अर्थ कि "एक तरह के परोंवाली चिड़ियाँ साथ ही उड़ा करती हैं" इसके साधारण अर्थ से कहीं गहरा है; क्योंकि विचार-संसार में भी भौतिक संसार की भाँति प्रत्येक वस्तु स्वजातीय से ही मिलती है।

पत्र का अनुवाद

अगर आप दया चाहते हैं, तो दयावान् होइए। अगर आप सचाई के इच्छुक हैं, तो सच्चे बनिए। जो कुछ आप देते हैं, वही आपको प्राप्त होता है। संसार आपका केवल प्रतिबिम्ब है। यदि आप उनमें से हैं, जो मृत्यु के पश्चात् एक और ही आनंददायी जगत् के लिये इच्छुक और प्रार्थी हैं, तो यह आपके लिये शुभ सूचना है कि आप इसी समय उस जगद् में प्रवेश कर उसका सुख ले सकते हैं। यह समस्त विश्व में व्याप रहा है और आपके अंदर भी प्रतीक्षा कर रहा है कि आप ढूँढ़कर उसका पता चलावें और उसके अधिकारी बन जायँ। जीवन के गुप्त नियमों के एक ज्ञाता ने कहा था—"जब मनुष्य यह कहे कि 'लीजिए यहाँ है, लीजिए वहाँ है', तो आपको उसका अनुयायी नहीं बनना चाहिए। ईश्वर का साम्राज्य आपके अंदर है।"

आपको जो कुछ करना है, वह केवल यही कि आप इस पर विश्वास करें। आप इस पर विश्वास तो करें, लेकिन शंका की छाया आपके मस्तिष्क पर न हो। फिर आप इस पर उस समय तक सोचते रहें, जब तक आप इसको समझ न जायँ। तब आप अपने भीतरी जगत् को पुनः स्थापित कर सकेंगे। जैसे-जैसे आप एक सत्य विकास से दूसरे सत्य विकास पर, एक अनुभव से दूसरे अनुभव पर अग्रसर होते जायँगे, वैसे-ही-वैसे आपको पता चलता जायगा कि बाह्य पदार्थ नितांत शक्ति-रहित हैं; और अगर कोई शक्ति है, तो वह अपनी ही अनुशासित आत्मा की जादू डालनेवाली शक्ति है।

पद्य का अनुवाद

यदि आप संसार को ठीक, उसकी तमाम बुराइयों तथा शत्रुओं को लुप्त, उसके जंगली स्थानों को हरा-भरा और निर्जन रेगिस्तानों को गुलाब की तरह पुष्प-युक्त करना चाहते हों, तो आप अपने को ठीक कीजिए।

यदि आप संसार को बहुत दिनों के पाप-बंधन से मुक्त करना, विदीर्ण हृदयों को पुनः सुधारना, शोक का नाश करना और मधुर ढारस धारण करना चाहते हैं, तो आप अपने में गति लाइए।

यदि आप संसार को बहुत दिनों की हीनावस्था से मुक्त करना, उसके दुःख और शोक का अंत करना, प्रत्येक प्रकार के घावों को पूरा करनेवाली प्रसन्नता को लाना और दुःखित को फिर से शांति देना चाहते हैं, तो आपको पहले अपने को ही चंगा कर लेना चाहिए।

यदि आप संसार को जगाना, उसके मृत्यु स्वप्न को भंग करना, अंधकारमय झगड़ों को मिटाना, उसमें प्रेम और शांति लाना और अमर जीवन के प्रकाश और सौंदर्य का विकास करना चाहते हैं, तो पहले आप अपने को जगाइए।

तीसरा अध्याय

अनिष्ट दशाओं से छुटकारा पाने का उपाय

यह देख और अनुभव करके कि बुराई केवल अपनी आत्मा के बीच में आ जाने से शाश्वत (नित्य) सुख के इंद्रियातीत आकार या रूप पर पड़ी हुई गमनशील छाया है और संसार एक दर्पण है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने ही स्वरूप का प्रतिबिंब देखता है, अब हम दृढ़ तथा सरल पैरों से स्पष्टीकरण के उस धरातल पर चढ़ते हैं, जहाँ पहुँचकर ही इस महान् नियम का साक्षात् देखा और अनुभव किया जा सकता है।

इस अनुभव के साथ ही यह ज्ञान भी होता है कि प्रत्येक वस्तु का समावेश कार्य-कारण की निरंतर पारस्परिक क्रिया में ही होता रहता है, और सम्भवतः कोई वस्तु इस नियम से पृथक् नहीं रह सकती। मनुष्य के अत्यंत ही तुच्छ विचार या शब्द और कर्तव्य से लेकर स्वर्गादि वस्तुओं के समूह तक यही नियम प्रधान है। एक क्षण के लिये भी कोई अविहित अवस्था नहीं टिक सकती; क्योंकि ऐसी दशा का होना उस नियम को न मानना और उसे रद करना होगा। इसलिये जीवन की प्रत्येक दशा एक नियमित अनुक्रम में बँधी हुई है, और प्रत्येक परिस्थिति का रहस्य और कारण उसी में वर्तमान रहता है। यह नियम कि "जैसा कोई बीज बोवेगा, वैसा ही फल पावेगा" नित्यता के दरवाज़े पर चमकते हुए अक्षरों में खुदा हुआ है। इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, इससे कोई छुटकारा नहीं पा सकता और न इसको कोई धोखा ही दे सकता है। जो कोई अपना हाथ अग्नि में डालेगा, उसको हाथ जलने का कष्ट सहना ही पड़ेगा, और

उस समय तक सहना पड़ेगा, जब तक वह उससे छुटकारा नहीं पा जाता। न तो अभिशाप ही न स्तुतियाँ ही इसके बदले में सहायक हो सकती हैं। ठीक इसी नियम से मस्तिष्क-साम्राज्य पर भी शासन होता है। घृणा, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, इंद्रिय-लोलुपता और लालच, ये सब अग्नि हैं, जो जलाती हैं, और जो कोई इनको केवल छू भी देगा, उसे जलने का कष्ट भोगना पड़ेगा। मस्तिष्क की इन अवस्थाओं को जो अनिष्टकारी कहा गया है, वह बिलकुल ठीक है; क्योंकि आत्मा के ये सारे उद्योग अज्ञानता के कारण उस नियम को उलट देने के लिये हैं, जिसका फल यह होता है कि अंतःकरण में नितांत अस्तव्यस्तता और सम्मोह उत्पन्न हो जाता है, जो कभी-न-कभी बाह्य परिस्थितियों में रोग, विफलता और विपत्ति के साथ-साथ ग्लानि, दुःख और निराशा के असल रूप में प्रकट होने लगते हैं। इनके विपरीत प्रेम, विनयशीलता, सदिच्छा और पवित्रता ठंडी वायु की भाँति हैं, जो प्रेम करनेवाली आत्मा पर शांति की वर्षा करती हैं, और जो अनंत नियम के ऐक्य में होने के कारण स्वास्थ्य तथा शांतिदायक संसार, निश्चित सफलता और सौभाग्य का रूप धारण करती हैं।

इस महान् विश्व-व्यापी नियम को भली भाँति समझ लेने से ही मनुष्य उस मानसिक दशा को प्राप्त होता है, जिसको भक्ति कहते हैं। इस बात को जान लेना कि न्याय, एकता और प्रेम ही विश्व में प्रधान हैं, ठीक उसी तरह से इस बात को भी जान लेना है कि समस्त विपरीत और दुःखदायी दशाएँ उसी नियम की अवहेलना के फल हैं। ऐसे ज्ञान से बल और शक्ति पैदा होती है, और ऐसे ही ज्ञान के आधार पर हम सच्चा जीवन स्थायी सफलता और आनंद का विधान कर सकते हैं। समस्त अवस्थाओं में धैर्य रखना और समस्त दशाओं को अपनी शिक्षा के लिये आवश्यक वस्तु मान लेना, अपने को दुःखदायी दशाओं से दूर रखना

और उनके ऊपर निश्चित विजय प्राप्त करना है। फिर उन दुःखदायी अवस्थाओं के लौटने की आशंका नहीं रह जाती: क्योंकि उन नियमों के अनुसार चलने की शक्ति से इन बुराइयों का एकदम नाश हो जाता है। इस प्रकार नियम का अनुसरण करनेवाला बिलकुल उस नियम के अनुकूल चलता है, और वास्तव में अपने को उसी नियम के तद्रूप बना लेता है। जिस किसी वस्तु पर वह विजय प्राप्त करता है, उस पर सदैव के लिये विजयी बन जाता है, और जिस वस्तु को वह बनाता है, फिर उसका कभी नाश नहीं हो सकता।

हमारी सारी शक्तियों का कारण हमारी निर्बलता के कारण की भाँति ही हमारे अंदर विद्यमान रहता है, और इसी प्रकार से समस्त दुःखों की भाँति समस्त सुखों का कारण और रहस्य भी हमारे ही अंदर है। आंतरिक विकास से पृथक् कोई उन्नति नहीं, और जब तक नियमित रूप से ज्ञान-वृद्धि नहीं होती, तब तक निश्चित रूप से सफलता और शांति का आगमन नहीं हो सकता। आपका कहना है कि आप अपनी परिस्थितियों से जकड़े हुए हैं। आप उत्तमतर सुअवसरों, विस्तृत अवकाश तथा उन्नत शारीरिक दशा के लिये विलाप करते हैं और शायद आप उस भाग्य को कोसते भी हैं, जो आपके हाथ-पाँव को जकड़े हुए है। मैं यह आप ही के लिये लिख रहा हूँ। आप ही हैं, जिनसे मैं वार्तालाप करना चाहता हूँ। सुनिए, और मेरे शब्दों को अपने हृदय में प्रदीप्त होने दीजिए; क्योंकि जो कुछ मैं कह रहा हूँ, सत्य है। "अगर आप निश्चित रूप से अपने आंतरिक जीवन को सुधारने का दृढ़ संकल्प कर लेंगे, तो आप अपने बाह्य जीवन में भी उस उन्नत दशा को सफलता-पूर्वक ला सकेंगे, जिसके लिये आप व्याकुल हैं।" मैं जानता हूँ कि प्रारंभ में यह मार्ग नितांत निष्फल प्रतीत होगा (सत्यता की दशा में ऐसा ही होता है। केवल भ्रमात्मक और त्रुटि-पूर्ण बातें ही आरंभ में मोहित करनेवाली

और प्रलोभन देनेवाली होती हैं)। परंतु यदि आप इस पर चलना स्वीकार करें, यदि आप धैर्य-पूर्वक अपना मस्तिष्क व्यवस्थित बनावें, अपनी निर्बलताओं को दूर करते जायँ और अपनी आत्मिक और आध्यात्मिक शक्ति को विकसित होने दें, तो आपको उन आश्चर्य-जनक परिवर्तनों पर विस्मय होगा, जो आपके बाह्य जीवन में दिखलाई देंगे। जैसे-जैसे आप अग्रसर होते जायँगे, वैसे-वैसे शुभ अवसर भी आपको अपने पथ पर मिलते जायँगे; और उनका उपयोग करने की शक्ति तथा निर्णय-शक्ति का आविर्भाव भी आपमें होता जायगा। विना बुलाए ही हँसमुख मित्र आपके पास आवेंगे। सहानुभूति-पूर्ण आत्माएँ आपकी ओर उसी तरह खिंच आवेंगी, जैसे चुंबक की ओर सुई; पुस्तकें तथा तमाम बाह्य सहायताएँ विना प्रयास ही आपकी आवश्यकता के अनुसार आपके पास आ जाया करेंगी।

शायद दरिद्रता की ज़ंजीर का भार आपके ऊपर अधिक है और आप विना किसी मित्र के बिलकुल ही अकेले हैं। आपकी प्रबल अभिलाषा है कि आपका भार हलका हो जाय, किंतु वह भार बना ही रहता है और आप अपने को लगातार बढ़ते हुए अंधकार में फँसा पाते हैं। शायद आप विलाप भी करते हैं, और अपने भाग्य पर रोते भी हैं। आप अपने जन्म, माता-पिता, मालिक या उन अन्यायी शक्तियों को इसके लिये दोषी ठहराते हैं, जिन्होंने आपको अनायास इन अनुचित विपत्तियों और कठिनाइयों में छोड़ रक्खा है, और दूसरों को इसके विपरीत ख़ूब संपत्ति तथा सुगमता दी है। आप अपना विलाप और दाँत पीसना बंद कीजिए। जिन वस्तुओं की आप शिकायत करते हैं, उनमें से एक भी आपकी दरिद्रता के लिये उत्तर-दायी नहीं। इसका कारण आपके अंदर है, और जहाँ कारण है, वहीं पर औषध भी है। आपका शिकायत करना ही यह प्रकट करता है

कि आप अपने इसी भाग्य के पात्र हैं। इसी से यह भी प्रकट होता है कि आपमें वह विश्वास नहीं, जो तमाम उद्योगों और उत्थानों की जड़ है। नियमित विश्व में शिकायत करनेवाले के लिये कोई स्थान नहीं, और चिंता करना आत्महनन करना है। अपनी मानसिक प्रवृत्ति से ही आप उन ज़ंजीरों को सबल बना रहे हैं, जो आपको जकड़े हुए हैं और उन्हीं की सबलता के कारण आपको आच्छादित करनेवाला अंधकार बराबर बढ़ता ही जाता है। आप जीवन के प्रति अपनी धारणा बदल दीजिए। फिर आपका बाह्य जीवन भी पलट जायगा। विश्वास तथा ज्ञान से ही अपना जीवन-भवन निर्माण कीजिए, और अपने को इससे भी अधिक शुभ अवसरों तथा उपयुक्त परिस्थितियों का पात्र बनाइए। सबसे पहले इतना निश्चय कर लीजिए कि जो कुछ आपके पास हैं, आप उसी का सबसे अच्छा उपयोग कर रहे हैं। यह मानकर अपने को धोका मत दीजिए कि छोटी बातों की उपेक्षा करके आप बड़ी बातों से लाभ उठा सकेंगे; क्योंकि यदि आप ऐसा कर भी सकेंगे, तो वह लाभ स्थायी न होगा। फिर शीघ्र ही आपको वह पाठ सीखने के लिये, जिसकी आपने उपेक्षा की है, नीचे आना पड़ेगा। जिस प्रकार पाठशाला में एक दर्जे से दूसरे दर्जे में तरक़्क़ी पाने के लिये लड़के को अपनी कक्षा का पाठ अच्छी तरह अध्ययन कर लेना चाहिए, उसी तरह वांछित लाभ प्राप्त करने के पहले आपको उसी से विश्वास-पूर्वक काम निकालना चाहिए, जो आपके पास है। विद्वानों की उत्तम दशा इसकी सत्यता दिखलाने को एक अच्छा उदाहरण है; क्योंकि वह स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित करती है कि यदि हम उस वस्तु का, जो हमारे पास है, दुरुपयोग, उपेक्षा और अध पतन करते हैं, तो चाहे वह कितनी ही तुच्छ और सार-हीन वस्तु क्यों न हो, वह भी हमसे ले ली जायगी; क्योंकि अपनी ही चाल से हम यह साबित कर

देते हैं कि हम उसके भी योग्य नहीं हैं। शायद आप एक छोटी-सी झोपड़ी में रहते हैं और आपके चारों ओर अस्वास्थ्यकर तथा दूषित पदार्थ पड़े हैं। यदि आपकी इच्छा है कि आपको निवास के लिये एक बड़ा और अधिक साफ़-सुथरा मकान मिल जाय, तो पहले आपको उसी निवास-स्थान को, जहाँ तक संभव हो, उसी छोटी-सी झोपड़ी को, स्वर्ग बनाकर यह दिखला देना चाहिए कि आप उसके योग्य हैं। उसको इतना साफ़-सुथरा रखिए कि कहीं एक धब्बा भी न रहे, और उसको इतना सुंदर तथा चित्ताकर्षक बनाइए, जितना आपकी परिमित शक्ति में हो। अपना सादा भोजन पूर्ण सावधानी से पकाइए और अपने भोजन के छोटे साधारण स्थान को इतने प्रेम से सुंदर सजाइए, जितना कि आपसे हो सकता हो। अगर आपके पास कोई आस्तरण (बिछावन) न हो, तो आप अपने कमरे में स्वागत और प्रसन्नमुखता का ग़लीचा डालिए और उसको धैर्य के हथौड़े के द्वारा तथा उदार वाक्यों की कीलों से ज़मीन में चिपका दीजिए। ऐसा ग़लीचा न तो धूप में ही ख़राब होगा और न लगातार काम में आने से फटेगा ही।

अपने चारों ओर की वर्तमान परिवेष्टित दशाओं को इस प्रकार उच्चतम करके आप अपने को उनसे परे कर लेंगे और आपको उनकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। ठीक समय आने पर आप इससे कहीं अच्छे भवन और परिस्थितियों में प्रवेश करेंगे, जो अब तक बराबर आपकी प्रतीक्षा कर रही थीं और जिनको प्राप्त करने के योग्य आपने अपने को बना लिया है।

कदाचित् आप उद्योग और विचार के लिये अधिक अवकाश चाहते हैं, और आप यह सोचते हैं कि आपके काम के घंटे बड़े ही कष्टदायक और अधिक हैं। ऐसी दशा में आपको देखना चाहिए कि जो कुछ बचत का वक्त आपके पास है, आप उसका ही जिस सीमा

तक समय है, अच्छा उपयोग करते हैं। अगर आप अपने थोड़े-से बचत के समय को भी व्यर्थ खो रहे हैं, तो और अधिक समय की आकांक्षा करना व्यर्थ है; क्योंकि इसका फल तो यही होगा कि आप और भी आलसी, उदासीन तथा निरुद्यमी बन जायँगे।

दरिद्रता, समय की कमी तथा अवकाशाभाव भी ऐसी बुराइयाँ नहीं, जैसी कि आप उनको समझते हैं। यदि वे आपकी उन्नति में अवरोधक होती हैं, तो इसका कारण केवल यही है कि आपने अपनी ही त्रुटियों का परिधान उनको भी पहना दिया है; और जो बुराई आप उनमें देखते हैं, वह वास्तव में आप ही में है। इस बात को पूर्णतः और सर्वथा अनुभव करने का यत्न कीजिए कि जहाँ तक आप अपने मस्तिष्क को बनावेंगे और सुधारेंगे, वहीं तक आप अपने भाग्य के विधाता होंगे; और जितना ही अधिक आप अपनी आत्मव्यवस्था की परिवर्तनकारी शक्ति द्वारा उसका अनुभव करेंगे, उतना ही आपको पता चल जायगा कि ये उपर्युक्त अनिष्टकारी कष्ट-दानेवाली अवस्थाएँ वास्तव में परमानंद की सामग्री में परिवर्तित हो सकती हैं। उस वक्त आप अपनी दरिद्रता से धैर्य, आशा और साहस की उन्नति में काम लेंगे और समयाभाव का कार्य की शीघ्रता और मस्तिष्क की निर्णय-शक्ति के बढ़ाने के काम में लावेंगे; क्योंकि आप उन बहुमूल्य समयों को कार्य में लावेंगे, जो आपके सामने आ सकेंगे। जिस प्रकार सबसे अधिक मरुभूमि में सबसे सुंदर पुष्प खिलते हैं, उसी प्रकार दरिद्रता की सबसे अधिक दुरवस्था में ही सबसे उत्तम मनुष्य-पुष्प खिले और विकसित हुए हैं। जहाँ कठिनाइयों का मुक़ाबला और असंतोष-जनक अव-स्थाओं पर विजय प्राप्त करना होता है, वहीं पर सद्वृत्तियाँ सबसे अधिक फूलती-फलती और अपना जौहर दिखाती हैं।

यह हो सकता है कि आप एक स्वेच्छाचारी, क्रूर मालिक या माल-

जिन की सेवा में हो, और ऐसा समझते हों कि आपके साथ बुरा बर्ताव होता है। आप इसको भी अपनी शिक्षा के लिये आवश्यक समझिए। आप अपने मालिक की क्रूरता का उत्तर अपने सद्व्यवहार और क्षमा द्वारा दीजिए। लगातार धैर्य और अपने पर स्वयं अधिकार रखने का प्रयत्न और अभ्यास कीजिए। अपनी कठिनाइयों को मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्ति के उपार्जन में लगाइए। उनका रूप पलट दीजिए। आप अपने शांतिमय उदाहरण और प्रभाव से अपने मालिक को भी शिक्षा देंगे, इस बात में उसकी सहायता भी करेंगे कि वह अपनी करतूतों पर लज्जित हो। साथ-ही-साथ आप उस आध्यात्मिक उन्नति तक अपना उत्थान करेंगे, जो सामने आने पर आपको एक नवीन और अधिक वाञ्छित अवस्था में प्रवेश करने में सहायता देगी। इस बात की शिकायत न कीजिए कि आप गुलाम हैं; बल्कि आप अपने शुद्ध आचरण से अपने को इस सेवकावस्था से परे की दशा में उन्नति करके ले जाइए। यह विलाप करने के पूर्व कि आप दूसरे के गुलाम हैं, आपको इसका निर्णय कर लेना चाहिए कि आप अपने ही गुलाम तो नहीं हैं। अपने अंदर देखिए, अनुसंधान-दृष्टि से ढूँढ़िए अपने ऊपर तिल-भर भी दया न कीजिए। आपको शायद वहाँ पर गुलामी के विचार, गुलामी की इच्छा, अपने जीवन में प्रतिदिन गुलाम बनानेवाली आदतें मिलेंगी। उन पर विजय प्राप्त कीजिए। स्वयं अपने मन का गुलाम बनना छोड़ दीजिए; फिर किसकी शक्ति है, जो आपको गुलाम बना सके? ज्यों ही आप अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लेंगे, त्यों ही तमाम प्रतिकूल अवस्थाओं पर भी विजयी हो जायँगे, और प्रत्येक कठिनाई आपके सामने सिर नवावेगी।

आप इस बात के लिये भी हाय-हाय न कीजिए कि धनाढ्य आपको पीड़ित करते हैं। क्या आपको निश्चय है कि यदि आप धनाढ्य हो जायँ, तो आप स्वयं भी सतानेवाले न बन जायँगे? स्मरण रखिए

कि यह अटल और बिलकुल ही सत्य नियम है कि जो आप मता रहा है, वह फल मताया जायगा; और इससे भागने का कोई मार्ग ही नहीं है। शायद आप कल—किसी पूर्व जीवन में—धनाढ्य और दुःख देनेवाले थे और आज केवल उस अटल नियम का ऋण-शोध-मात्र कर रहे हो। इसलिये दृढ़ता और विश्वास रखने का अभ्यास कीजिए। अपने मस्तिष्क में निरंतर उसी अटल शक्ति और शाश्वत सुख का स्मरण किया कीजिए। अपने को मूर्तिमान् और अस्थायी से परे अमूर्त तथा स्थायी में ले जाने का यत्न कीजिए। इस भ्रम को दूर कर दीजिए कि दूसरे आपको हानि और पीड़ा पहुँचा रहे हैं। आंतरिक जीवन तथा उस पर शासन करनेवाले नियमों का उच्चतम ज्ञान प्राप्त करके यह अनुभव करने की चेष्टा कीजिए कि वास्तव में आप अपने अंदर की बातों से ही क्षति उठाते हैं। अपने पर आप दया करने की अपेक्षा और कोई आदत अधिक गिराने, नीच बनाने तथा आत्मा का नाश करनेवाली नहीं है। इसको अपने से दूर हटाइए। जब तक यह आत्म-दया का कीड़ा आपके हृदय को खाता रहेगा, तब तक आप कभी पूर्ण जीवन प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते। दूसरों की शिकायत करना छोड़ दीजिए। केवल अपनी शिकायत कीजिए। अपने किसी ऐसे काम, इच्छा या विचार के लिये अपने को क्षमा न कीजिए, जिसकी प्रतियोगिता कलंक-रहित पवित्रता में न हो सकती हो, या जो पाप-रहित सत्यता के प्रकाश के सामने न रुक सकता हो। ऐसा करने से आप नित्यता की चट्टान पर अपना भवन-निर्माण करेंगे, और आपके कल्याण तथा सुख के लिये जिन बातों की आवश्यकता होगी, वे सब अपने समय पर आप आ जाया करेंगी।

दरिद्रता और अवाञ्छनीय अवस्था से स्थायी मुक्ति पाने के लिये इसके अतिरिक्त कोई निश्चित विधान नहीं कि आप अंतःकरण की उन स्वार्थ-पूर्ण और निषेधात्मक अवस्थाओं को दूर

भावों, जिनके ये प्रतिबिंब हैं, और जिनके ही आधार पर इनका अस्तित्व है। सच्ची दौलत की प्राप्ति का मार्ग आत्मा को सात्त्विक गुण-संपन्न बनाना है। वास्तविक हार्दिक सद्गुणों के बाहर न तो आनंद है और न सुख; वरन् केवल इनका मिथ्या रूप है। मैं यह बात जानता हूँ कि ऐसे लोग भी धन पैदा करते हैं, जिन्होंने कोई गुण प्राप्त नहीं किया और जिनकी इच्छा भी गुण प्राप्त करने की नहीं है। परंतु ऐसे द्रव्य को असल धन नहीं कहते, और इसका अधिकार भी क्षण-भर के लिये ही और बुरा होता है।

लीजिए, यह डेविड (David) का कथन है—"जब मैं बुरे आदमियों को धनी देखता था, तो बेवक़ूफ़ों से द्वेष करता था। उनकी आँखें मोटाई के कारण निकली हुई होती थीं और उनके पास इतना धन था, जिससे उनकी इच्छा भी कम ही थी। वास्तव में मैंने व्यर्थ ही अपने हृदय की सफ़ाई की है और अपने हाथों को निर-पराध साबित किया है।... . जब मेरा विचार इसे जानने का हुआ, तो यह मेरे लिये नितांत दुःखदायी निकला। जब मैं परमात्मा की शरण में गया, तभी उनका परिणाम मेरी समझ में आया।" बुरे लोगों का सुखी तथा संपन्न होना उस वक़्त डेविड के लिये महती परीक्षा थी। जब तक वह परमात्मा की शरण में नहीं गया, तब तक उसको उनके परिणाम का ज्ञान नहीं हुआ। इसी तरह आप भी उस देवालय में जा सकते हैं, और वह देवालय आपके अंदर ही है।

जब सारी हदों, व्यक्तिगत और अस्थायी दशाओं को आप पार कर जाते हैं और सब नियमों तथा व्यापक सिद्धांतों का आपको ज्ञान हो जाता है, तब जो चेतनावस्था शेष रह जाती है, वही देवागार है। यही महती चेतना की दशा है। यही सर्वोच्च तथा सर्वोपरि का निवास-स्थान है।

चिरकालीन परिश्रम और आत्मव्यवस्था के नियमों द्वारा जब आप इस पवित्र मंदिर के दर्वाज़ों में प्रवेश करने में सफल हो जायँगे, तो अनवरुद्ध दृष्टि से मनुष्यों के भले-बुरे दोनो प्रकार के विचार तथा कर्तव्यों के अंत और फल देख पड़ेंगे। उस वक्त जब आप दुराचारी को बाह्य धन एकत्र करते देखेंगे, तब आपका विश्वास ढीला नहीं पड़ेगा; क्योंकि आप जानते होंगे कि वह फिर दरिद्र और च्युत होगा। गुण-हीन धनाढ्य मनुष्य वास्तव में भिखारी है। बिना प्रयास ही धन के मध्य में दरिद्रता तथा विपत्ति की ओर उसी प्रकार निश्चित रूप से उसका अध पतन हो रहा है, जैसे नदी का पानी बिना कुछ सोचे-समझे ही समुद्र में जाता है। चाहे वह मरते समय धनाढ्य ही क्यो न हो, परन्तु फिर भी वह अपने दुराचारों का विषैला फल भोगने के लिये जन्म लेगा। यद्यपि अनेक बार वह संपत्तिशाली बन जाय, तब भी उस समय तक उसको उतने ही बार दरिद्र होना पड़ेगा, जब तक कि बहुत दिनों के अनुभव और कष्ट सहन से वह अपनी भीतरी दरिद्रता पर विजय न प्राप्त कर लेगा। जो मनुष्य ऊपर से तो गरीब है, परंतु गुणों का भंडार है, वही वास्तव में धनी है। तमाम गरीबी से परिवेष्टित रहने पर भी वह निश्चय रूप से सुख की ओर अग्रसर हो रहा है। अपरिमित प्रसन्नता और आनंद उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

अगर आप वास्तव में और सदैव के लिये एक ही बार संपन्न तथा सुखी होना चाहते हैं, तो पहले आपको धर्मात्मा बनना चाहिए। इसलिये यह मूर्खता है कि सीधे-सीधे आप सुख को ही जीवन का एकमात्र उद्देश बनाकर उसकी ओर अपना लक्ष्य रक्खें और लालच के वश होकर उसी को प्राप्त करने का यत्न करें। ऐसा करना अंत में अपने को पराजित करना है। बल्कि आपको पूरा धर्मात्मा बनने पर लक्ष्य रखना चाहिए—उपयोगी और स्वार्थ-रहित

सेवा को अपने जीवन का उद्देश बनाना और अपरिवर्तनशील, सर्वोपरि प्रधान की ओर ही विश्वास के साथ हाथ बढ़ाना चाहिए।

आप कहते हैं, आप अपने लिये नहीं, बल्कि भलाई करने और दूसरों को सुखी बनाने के लिये धन चाहते हैं। यदि धनेच्छा करने में आपका वास्तविक उद्देश यही है, तो आपको अवश्य धन मिलेगा; क्योंकि यदि धन से आच्छादित होने पर भी आप अपने को मालिक नहीं, बल्कि केवल एक कारिंदा समझते हैं, तो आप शक्तिशाली और स्वार्थ-रहित हैं। परन्तु आप अपने उद्देश की भली भाँति परीक्षा कर लीजिए; क्योंकि अधिकांश दशाओं में जहाँ दूसरों को सुखी बनाने के स्वीकृत उद्देश से लोग धन चाहते हैं, वहाँ असल छिपा हुआ उद्देश केवल सर्व-प्रियता का प्रेम या अपने को सुधारक और विश्व-मित्र दिखलाने की इच्छा होती है। अगर आप अपनी थोड़ी-सी संपत्ति से भलाई नहीं कर रहे हैं, तो आप इसको मान लीजिए कि जितना ही अधिक धन आपको मिलेगा, आप उतने ही अधिक स्वार्थी होते जायँगे, और आप अपनी संपत्ति से जो कुछ भलाई किसी भी प्रकार की करते मालूम पड़ेंगे, उतना ही स्वयं अपनी पीठ ठोंकने की बुरी आदत को आप धीरे-धीरे बढ़ाते जायँगे। अगर आपकी वास्तविक इच्छा भलाई करने की है, तो धन-प्राप्ति की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। आप इसी क्षण, अभी और इसी स्थान पर, जहाँ आप हैं, ऐसा कर सकते हैं। यदि आप वास्तव में स्वार्थ-रहित हैं, जैसा कि आप अपने को समझते हैं, तो अभी आप दूसरों के लिये आत्मत्याग कर इसका सबूत दे सकते हैं। चाहे आप कितने ही ग़रीब क्यों न हों, आपके लिये स्वार्थ-त्याग का स्थान है। क्या एक विधवा ने अपना सारा धन राज-कोष में नहीं छोड़ दिया था? जो हृदय वास्तव में दूसरों की भलाई करना चाहता है, वह भलाई करने के पूर्व द्रव्योपार्जन की प्रतीक्षा नहीं करता; बल्कि वह

स्वार्थ-त्याग की वेदी के पास जाता है और वहाँ अपने हृदय के तमाम आत्मोपयोगी भागों को छोड़कर बाहर आता है। तत्पश्चात् क्या समीपवर्ती और क्या अपरिचित, क्या मित्र और क्या वैरी, सब पर वह बराबर आनंद की वर्षा करता है।

जिस प्रकार कार्य का संबंध कारण से होता है, उसी प्रकार संपन्नता, सुख और शक्ति का संबंध अंतःकरण की शुभावस्था से होता है और दरिद्रता तथा निर्बलता का संबंध भीतरी दुरवस्था से। द्रव्य न तो वास्तविक संपत्ति है और न वह प्रतिष्ठा या शक्ति ही है। केवल द्रव्य पर ही निर्भर रहना एक चिकनी जगह पर खड़ा होना है।

आपका असल धन आपके गुणों का भंडार है और आपकी वास्तविक शक्ति वे उपयोगी कार्य हैं, जिनके संपादन में आप इन गुणों से लाभ उठाते हैं। आप अपने हृदय को शुद्ध कीजिए, आपका जीवन ठीक हो जायगा। लोलुपता, घृणा, क्रोध, झूठा घमंड, डींग हाँकना, लालच, भोग-विलास, स्वार्थ-परता तथा हठ से ही भारी दरिद्रता और निर्बलता होती है। इसके प्रतिकूल प्रेम, पवित्रता, साधुता, विनय, धैर्य, क्षमा दयालुता, स्वार्थ-त्याग तथा स्वार्थ-विस्मरण ये सब संपत्ति और शक्ति हैं।

ज्यों ही दरिद्रता और निर्बलता की अवस्थाओं पर विजय प्राप्त होती है, त्यों ही भीतर से सर्वविजयी और अगम्य शक्ति का विकास होता है, और जो कोई सर्वोच्च गुण के उपार्जन में सफलीभूत होता है, उसके पैरों पर सारा जगत् सिर नवाता है।

जैसी ग़रीबों की अवांछनीय दशाएँ होती हैं, वैसी ही धनियों की भी होती हैं और प्रायः वे गरीबों की अपेक्षा सुख से अधिक दूर होते हैं। यहाँ पर हमको पता चलता है कि सुख बाह्य सहायता या अधिकार पर निर्भर नहीं है, बल्कि आंतरिक जीवन पर। शायद

आप स्वामी हैं, और आपको अपने मज़दूरों से बहुत कष्ट मिलता है। यदि आपको अच्छे और विश्वास-पात्र नौकर मिलते हैं, तो वे शीघ्र ही आपको छोड़ जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कदाचित् आपका विश्वास मनुष्य-स्वभाव पर से उठने लगता है या बिलकुल उठ जाता है। आप चाहते हैं कि अधिक अच्छी तनख़्वाहें देकर तथा कुछ स्वतंत्रता प्रदान करके इन दशाओं को सुधार दें। परंतु तब भी अवस्था नहीं बदलती। अच्छा, आप मेरी सलाह लीजिए। आपकी तमाम कठिनाइयों का कारण आपके नौकरों में नहीं, बल्कि आप ही में है। यदि आप अपनी त्रुटियों का पता लगाकर उनको दूर करने के लिये सच्चे और शुद्ध मन से अपने अंत:-करण की परीक्षा करेंगे, तो कभी-न-कभी आपको अपने तमाम दु:खों की जड़ का पता लग जायगा। वह कोई स्वार्थ-पूर्ण इच्छा या छिपा हुआ अविश्वास अथवा अनुदार मानसिक वृत्ति हो सकती है, जो अपने विष को उन लोगों के ऊपर डालती है, जो आपको घेरे हुए हैं और उसी का प्रतिघात आप पर होता है। यद्यपि आप इसे अपने भाषण तथा व्यवहार से प्रकट नहीं होने देते; परंतु तो भी कारण यही है। आप अपने नौकरों की दशा का उदारता के साथ ख़याल कीजिए, उनके सुबीते और सुख का ध्यान रखिए और उनसे कभी उस सेवा की कामना न कीजिए, जिसको आप स्वयं, अगर उनके स्थान में होते तो, न करते। आत्मा की वह विनय-पूर्ण दशा, जिसमें कोई सेवक अपने मालिक की भलाई में अपने को बिलकुल ही भूल जाय, अत्यंत ही सुंदर होती है; परंतु यह कम पाई जाती है। इससे भी कहीं कम वह ईश्वरीय सौंदर्य से विभूषित आत्मा की साधुता पाई जाती है, जिसके कारण कोई मनुष्य अपना सुख भूलकर उन लोगों के सुख का ख़याल रखता है, जो उसके अधिकाराधीन हैं और जिनका शारीरिक पालन-पोषण उसी पर निर्भर है। ऐसे मनुष्य

की प्रसन्नता दसगुनी बढ़ जाती है, और उसको अपने सेवकों की शिकायत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। एक प्रसिद्ध और अधिक मुलाज़िम रखनेवाले ने, जिसको कभी अपने मुलाज़िमों को बरख़ास्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी, कहा था—"मेरा अपने मुलाज़िमों से सबसे अधिक सुखदायी संबंध है। यदि आप मुझसे पूछें कि इसका क्या कारण है, तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि आरंभ से ही सदैव मेरा यह सिद्धांत रहा है कि मैं उनके साथ पहले से ही वैसा बर्ताव करूँ, जैसा मैं अपने प्रति चाहता हूँ।" इसी सिद्धांत में वह रहस्य छिपा हुआ है, जिससे सारी वांछित अवस्थाएँ प्राप्त हो सकती हैं, और समस्त अवांछित दशाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। क्या आपका कथन है कि आप अकेले हैं, और न तो आपसे कोई प्रेम करता है, न आपका संसार में कोई मित्र है? तो मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अपने दुःख के लिये किसी दूसरे को नहीं, बल्कि अपने ही को दोषी ठहराइए। आप दूसरों के साथ मैत्री का व्यवहार कीजिए; फिर साथी आपको घेरे रहेंगे। आप अपने को पवित्र तथा प्रेम-पात्र बनाइए; फिर सभी आपसे प्रेम करेंगे।

जिन दशाओं के कारण आपका जीवन भार-स्वरूप बन रहा है, उनको आप, अपने में आत्म-शुद्धि और आत्म-विजयजन्य परिवर्तन-शक्ति को विकसित कर और उपयोग में लाकर, पार कर सकते हैं। चाहे वह वह दरिद्रता हो, जो आपको सता रही है (स्मरण रखिए कि दरिद्रता, जिसका मैं उल्लेख कर रहा हूँ, वह दरिद्रता है, जो आपकी आपदाओं का कारण है; न कि वह स्वेच्छा-पूर्वक लाई हुई दरिद्रता है, जो मुक्त आत्मा का आभूषण है।) या वह धन हो, जो भार बन जाता है, या बहुत-सी आपत्तियाँ, दुःख और असुविधाएँ हों, जो आपके जीवन-जाल का अधकारमय आधार हैं, आप सब पर विजय प्राप्त कर

सकते हैं। लेकिन कब? जब आप अपने अंतःकरण की उन स्वार्थ-पूर्ण बातों पर विजय प्राप्त कर लें, जो इन अवांछनीय दशाओं को जीवन प्रदान करती हैं!

इससे कुछ मतलब नहीं कि उस अभ्रांत नियम के अनुसार आपके पूर्व-जन्म के कुछ ऐसे विचार और काम हैं, जिनके आधार पर आप काम कर सकें, तथा जिनसे कर्मों की पूर्ति हो सकती हो; क्योंकि उसी नियम के अनुसार हम अपने जीवन के प्रति क्षण में नवीन विचारों और कार्यों को गति देते जाते हैं, और यह हमारी शक्तियों में है कि हम उनको भला या बुरा बनावें। इससे यह भी परिणाम नहीं निकलता कि अगर कोई मनुष्य (जो अपने पूर्व-जन्मों का फल भोग रहा है) अपने द्रव्य-स्थान से वंचित हो रहा है, तो वह धैर्य और सचाई को छोड़ दे; क्योंकि उसके लिये सचाई और धैर्य द्वारा ही धन, शक्ति और सुख की प्राप्ति सभव है।

जो केवल अपना ही ख्याल करता है, वह स्वयं अपना शत्रु है, और शत्रुओं से घिरा हुआ रहता है। जो कोई अपना स्वार्थ छोड़ता है, वही अपना रक्षक है; और उसके चारो ओर मित्र लोग उसी तरह घिरे रहते हैं, जैसे एक तैराक की रक्षा करनेवाली पेटी उसको घेरे रहती है। पवित्र हृदय से निकले हुए पवित्र प्रकाश के आगे तमाम अंधकार दूर हो जाता है—तमाम बादल गल जाते हैं। सचमुच जिसने आत्म-विजय प्राप्त कर ली, उसने विश्व को जीत लिया। इस-लिये अपनी ग़रीबी को छोड़िए, और अपने दुःखो को दूर भगाइए। विलाप, कठिनाइयों, दीर्घ श्वास, हृदय वेदना और निर्जनता को छोड़ने के लिये आप अपने से बाहर आइए। अपने तुच्छ स्वार्थ के पुराने फटे चोंगे को अपने ऊपर से गिर जाने दीजिए, और विश्व-प्रेम का नवीन वस्त्र धारण कीजिए। तब आपको भीतरी स्वर्ग का अनुभव होगा, और आपके बाह्य जीवन में उसी का आभास दिखलाई देगा।

वह मनुष्य जो दृढ़ता-पूर्वक आत्म-विजय के मार्ग पर चलेगा, और विश्वास की छड़ी के सहारे आत्म-त्याग के पथ पर अग्रसर होगा, निश्चित रूप से सर्वोपरि सुख प्राप्त करेगा, और अपरिमित स्थायी सुख तथा परमानंद का भागी होगा।

पद्य का अनुवाद

उन मनुष्यों के बुद्धिमत्ता-पूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति में, जो सर्वोत्तम सुख चाहते हैं, सब सहायक हो जाते हैं। उनके लिये कोई बात बुरी नहीं रह जाती, और उनकी बुद्धिमानी से बुराइयों के भांडार में भी अच्छी बातों का रूप आ जाता है।

अंधकार में डालनेवाला शोक उस सितारे को भी ढक लेता है, जो प्रसन्नतोत्पादक प्रकाश की वर्षा करने के लिये प्रतीक्षा कर रहा था। शोक करने से स्वर्ग के स्थान में नरक मिलता है। रात्रि के बीत जाने पर दूर से सुनहली यश-किरणों का आगमन होता है।

विफलताएँ वे सीढ़ियाँ हैं, जिन पर होकर हम और भी उच्च परिणामों की सिद्धि के लिये इनसे कहीं अधिक पवित्र उद्देश्यों को लेकर अग्रसर होते है। मनुष्य क्षति उठाकर ही लोभ की ओर बढ़ता है, और समय की पहाड़ी पर दृढ़ता-पूर्वक जैसे-जैसे वह चढ़ता है, उसको वैसी ही प्रसन्नता होती है।

दुःख पवित्र परमानंद के मार्ग तक पहुँचाता है, और पवित्र विचार, कथन तथा कर्तव्यों के लिये रास्ता बतलाता है। वे बादल, जो शोकोत्पादक होते हैं, और वे किरणें, जो जीवन-मार्ग में बराबर साथ रहती हैं, दोनो चरणों को चूमती हैं।

विपत्ति तो रास्ते को केवल अंधकारमय बादलों से घेर देती है; परंतु उसका अंत हमारी इच्छा पर निर्भर है। और, साथ-ही-साथ सफलता के आकाश में सूर्य-चुंबी तथा ऊँची चोटियाँ हमारी इच्छा और विश्राम की प्रतीक्षा करती हैं।

भ्रमों तथा आशंकाओं का भारी आच्छादन जो हमारी आत्माओं को ज्ञान को ढके हुए है, वे इच्छाएँ, जिनसे आत्मा को मुक़ाबला करना पड़ता है, उष्ण आँसुओं की प्रचुरता, हृदय-वेदना, आपत्तियाँ, शोकातुरता, छिन्न संबंधों से उपजे घाव, ये सभी वे मार्ग हैं, जिनके द्वारा हम निश्चित विश्वास पथ पर अग्रसर होते हैं।

प्रेम, दुःख, वेदना, तंत्रता आदि भाग्य-भूमि के यात्री का स्वागत करने के लिये दौड़ते हैं। 'कीर्ति' और सुख सभी आज्ञाकारी क़दमों की प्रतीक्षा करते हैं।

चौथा अध्याय

विचार-जन्य मूक शक्तियाँ

अपनी शक्तियों का शासन तथा व्यवस्था

विश्व की सबसे बलवान् शक्तियाँ मूक हैं। जो शक्ति जितनी ही प्रबल होती है, ठीक रूप से प्रयोग में लाने पर वह उतनी ही लाभदायक होती है; और भ्रांतिमय मार्ग से काम में लाने पर वह उतनी ही नाशकारी भी होती है। यांत्रिक शक्तियों (जैसे विद्युत् और वाष्प-शक्तियाँ आदि) के विषय में तो लोगों को इस बात का साधारण ज्ञान है ही, लेकिन अब तक मानसिक क्षेत्र में इस ज्ञान का प्रयोग करनेवाले बहुत थोड़े लोग हुए हैं। मानसिक क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ संसार की ये सबसे प्रबल शक्तियाँ (विचार-जन्य मूक शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं, और मुक्ति तथा विनाश की शक्तियों का रूप धारण कर संसार में प्रेषित की जाती हैं।

अपने विकास की इस अवस्था में पहुँचकर मनुष्य इन शक्तियों का अधिकारी बन गया है, और उसके वर्तमान अभ्युत्थान का सारा झुकाव उनको अपने अधीन बनाने की ओर है। इस भाँति संसार में अपने ऊपर पूर्ण अधिकार जमा लेने में ही मनुष्य की बुद्धिमानी है, और इस आदर्श, यानी "अपने शत्रुओं से प्रेम करो," का अर्थ केवल इस बात के लिये प्रोत्साहन देना है कि अभी और इसी स्थान पर उन मानसिक शक्तियों पर अपना सिक्का जमा लीजिए, जिनका मनुष्य ग़ुलाम बन रहा है, जिनके कारण तिनके की तरह स्वार्थ-तरंगों में विवश होकर बहता जा रहा है, और उनके

स्वामी बनकर तथा उनमें परिवर्तन करके सर्वोच्च ज्ञान के अधिकारी बनिए।

इस प्रधान नियम का ज्ञान रखनेवाले यहूदी पैग़ंबरों का यही कथन था कि बाह्य घटनाओं का संबंध आंतरिक विचारों से होता है; और किसी जाति की सफलता तथा अध:पतन का संबंध भी वे उन्हीं विचारों और इच्छाओं से जोड़ते थे, जो उस समय उस जाति में प्रधान रूप से अपना शासन जमाए हुए होती थीं। विचारों की उत्पादक शक्ति का ज्ञान जिस तरह तमाम असल ज्ञान और शक्तियों का आधार है, ठीक उसी तरह उनकी उक्तियों का आधार भी यही ज्ञान है। जातीय घटनाएँ केवल जाति की आध्यात्मिक शक्तियों के कार्य का फल हैं। युद्ध, महामारी तथा अकाल अधर्मी मार्गों में भेजी हुई विचार-शक्तियों के संघर्षण तथा टक्कर खाने के फल हैं, और इन्हीं अंतिम दशाओं में नियम के कारिंदे का रूप धारण कर विनाश सामने आता है। युद्ध का कारण एक मनुष्य या मनुष्यों का एक समाज बतलाना केवल मूर्खता है। यह राष्ट्रीय स्वार्थ-परता का सर्वोपरि दु:खदायी परिणाम है। तमाम बातों को प्रत्यक्ष रूप देनेवाली मूक और विजय-प्राप्तकारी विचार-जन्य शक्तियाँ होती हैं। विश्व विचार का विकार है। भौतिक पदार्थ विश्लेषण की अंतिम अवस्था में केवल विषयात्मक विचार पाया जाता है। मनुष्य के तमाम कार्य पहले विचार-क्षेत्र में होते हैं, और तब उनको विषयात्मक रूप मिलता है। लेखक, आविष्कर्ता या गृह-निर्माण करनेवाला पहले अपने तमाम कार्य की सृष्टि विचार-क्षेत्र में करता है, और उसी स्थान में उसके हरएक अंग को पूरा करके और उनको एक रंग तथा रूप के बनाकर भौतिक रूप देना आरंभ करता है। तब जाकर वह उनको भौतिक तथा इंद्रियलोक में लाता है।

जब विचार-शक्तियों का संचालन प्रधान नियम के अनुकूल होता

है, तो वे शक्तियाँ उन्नति तथा संरक्षा करनेवाली होती हैं ; और जब उनका उल्लंघन होता है, तो वे छिन्न-भिन्न करनेवाली और विनाशकारी हो जाती हैं।

सच्चिदानंद की सर्वशक्तिमत्ता और प्रधानता में पूर्ण विश्वास रखकर अपने विचारों को तदनुसार बनाना, उस सच्चिदानंद के साथ सहयोग करना और अपने अंदर अनिष्ट वस्तुओं के विनाश का अनुभव करना है। विश्वास कीजिए, और फिर आप उसी पर चलने लगिएगा। यहीं पर हमको मुक्ति का सच्चा अर्थ मालूम होता है ; अर्थात् अंधकार से मुक्ति और अवांछित विषयों का अंत, ये दोनो बातें नित्य सच्चिदानंद के जीवित प्रकाश में प्रवेश करने और उसका अनुभव करने से ही हो सकेंगी।

जहाँ पर आशंका, दुःख, चिंता, भय, कष्ट, चोभ और निरुत्साह होता है, वहीं पर विश्वास का अभाव भी होता है। ये मानसिक परिस्थितियाँ स्वार्थ के प्रत्यक्ष फल हैं, और इनका आधार बुराइयों की शक्ति और प्रधानता के सहज विश्वास पर है। इस कारण ये नास्तिकता के वास्तविक रूप हैं, और बराबर इन्हीं निषेधात्मक आत्म-विनाशक मानसिक अवस्थाओं के अनुसार ही रहना और उनका कारण बनना सच्ची नास्तिकता है।

जाति की जो परमावश्यकता है, वह इन्हीं अवस्थाओं से मुक्ति पाना है। किसी आदमी को, जब तक वह इनके अधीनस्थ तथा आज्ञाकारी गुलाम है, मुक्ति-प्राप्ति का अभिमान करने का अधिकार नहीं। डरना या दुःखित होना उतना ही बड़ा पाप है, जितना कि कोसना ; क्योंकि अगर कोई वास्तव में परम न्यायी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानंद और अपरिमित प्रेम-मूर्ति भगवान् में विश्वास करता है, तो वह क्यों डरेगा और दुःखित होगा ? डरना, दुःखित होना और शंका करना ईश्वर को न मानना और उसमें अविश्वास करना है।

इन्हीं मानसिक अवस्थाओं से तमाम निर्बलताएँ और विफलताएँ उत्पन्न होती हैं; क्योंकि ये निर्बलताएँ और विफलताएँ उन वास्तविक विचार-जन्य शक्तियों के विध्वस्त तथा भग्न रूप या रूपांतर हैं, जिनका, यदि, नाश न हुआ होता, तो शीघ्रता तथा शक्ति के साथ वे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होतीं और उपयोगी फल उत्पन्न करतीं।

इन निषेधात्मक (Negative) अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करना ही शक्तिशाली जीवन में प्रवेश करना तथा सेवकावस्था का अंत कर स्वामी बनना है; और आंतरिक ज्ञान को लगातार प्रति-दिन वृद्धि करना ही इस विजय-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है।

अवांछनीय दशा की मानसिक उपेक्षा ही पर्याप्त नहीं। नित्य के अभ्यास से उनको समझना और उनसे परे होना चाहिए। केवल मन से ही भलाई को मान लेना यथेष्ट नहीं। दृढ़ यत्न करके उसमें प्रवेश करना और उसको समझना चाहिए।

आत्म-शासन के विवेकमय अभ्यास में मनुष्य अपनी आंतरिक विचार-जन्य शक्तियों को जान जाता है, और तब उसको वह शक्ति प्राप्त हो जाती है, जिससे उन आंतरिक शक्तियों का ठीक-ठीक उपयोग और संचालन होता है। जिस सीमा तक आप अपने ऊपर और अपनी मानसिक शक्तियों पर आधिपत्य स्थापित कर लेंगे (न कि खुद उनको अपना मालिक बन जाने देंगे), ठीक उसी सीमा तक आप अनेक कर्तव्यों और बाह्य परिस्थितियों पर शासन कर सकेंगे।

मुझको कोई ऐसा आदमी दिखलाइए, जिसके छूने ही से हरएक वस्तु चकनाचूर हो जाती हो, और जिसके हाथ में यदि सफलता लाकर रख दी जाय, तब भी वह उसकी रक्षा न कर सके, तो मैं आपको एक ऐसा मनुष्य दिखला दूँगा, जो बराबर उन्हीं मानसिक अवस्थाओं में रहता है, जिनको आप शक्ति की अभावावस्था कहेंगे। चाहे सफलता और प्रभाव प्रवेशार्थ आपके दरवाज़े पर सदैव शोर ही मचाते

रहें, परंतु फिर भी सदैव आशंका के दलदल में लोटना, भय के बलुए पंक में धँसते जाना या चिंता की आँधी में बराबर इधर-उधर उड़ते रहना, अपने को ग़ुलाम बनाना और दासता का जीवन बिताना है। इस प्रकार का मनुष्य जिसमें विश्वास और आत्म-शासन न हो, अपनी परिस्थिति पर ठीक-ठीक शासन नहीं कर सकता, और सदैव घटना-चक्रों का ग़ुलाम रहता है। वास्तव में वह स्वयं अपना ही दास होगा। विपत्ति ही ऐसे लोगों को शिक्षा देती है, और अंत में दुःख-दायी तीखे अनुभव का मज़ा उठाकर वे निर्बलता छोड़कर शक्तिशाली बनते हैं।

विश्वास और उद्देश जीवन में गति पैदा करनेवाले होते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो दृढ़ विश्वास और स्थिर उद्देश के सामने असाध्य हो। मूक (Silent) विश्वास का नित्य अभ्यास करने से विचार-जन्य शक्तियाँ एकत्र होती हैं और प्रतिदिन इन अमूर्त संकल्पों को दृढ़ बनाने से ये शक्तियाँ पूर्णतः अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती हैं।

चाहे जीवन की किसी अवस्था में आप क्यों न हों, परंतु इसके पूर्व कि आप सफलता, उपयोगिता और शक्ति के किसी भी अंश को प्राप्त करने की आशा कर सकें, आपको अपने अंदर शांति और स्थिरता उत्पन्न करके विचार-शक्तियों को एक स्थान पर जमाना सीखना पड़ेगा। ऐसा हो सकता है कि आप एक व्यवसायी मनुष्य हों, और एकाएक आपको नितांत बड़ी कठिनाइयों, संभवतः नाश का मुक़ाबला करना पड़ जाय। आप भयभीत और चिंतित हो जाते और बुद्धि को बिलकुल खो बैठते हैं। ऐसी मानसिक अवस्था को जारी रखना प्राण-घातक होगा; क्योंकि मस्तिष्क के अंदर चिंता का प्रवेश होते ही उचित विवेचन की शक्ति उड़ जाती है। अगर इस अवस्था में आप प्रातःकाल या शाम के दो-एक घंटों को विचार के काम में लावें और किसी निर्जन स्थान पर या अपने मकान के किसी ऐसे

कमरे में लायँ, जहाँ पर आप जानते हैं कि आप लोगों के हठात् प्रवेश से बिलकुल मुक्त होंगे, और स्वस्थ रूप से आसन लगाकर बैठ जायँ, और अपने दिमाग़ को चिंता के विषय से हठात् बिलकुल ही पृथक् कर अपने जीवन की किसी सुखदायी तथा आनंद-जनक दशा पर विचार करने में लगावें, तो एक शांति और सुखदायी शक्ति क्रमशः आपके मस्तिष्क में प्रवेश करेगी, और आपकी चिंता दूर हो जायगी। ज्यों ही आप देखें कि आपका दिमाग़ फिर चिंतावाली नीची दशा में लौट रहा है, तो आप उसको वापस लाकर शांति तथा शक्ति की दशा में लगा दें। जब यह दशा पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाय, तब अपने पूरे दिमाग़ को कठिनाई के हल करने के विचार में लगा दीजिए। चिंता के वक़्त जो कुछ आपको पेचीदा और दुर्गम्य प्रतीत होता था, अब वही आपके लिये बिलकुल सरल और सीधा हो जायगा, और आप स्वच्छ दृष्टि तथा पूर्ण निर्णय-शक्ति से देखने लगेंगे, जिसको एक शांत और सुखी मस्तिष्क में ही कोई पा सकता है। आपको मालूम हो जायगा कि अब चलने के लिये कौन ठीक रास्ता है, और अब किस उचित दशा को प्राप्त करना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि कई दिनों तक आपको बराबर कोशिश करनी पड़े, और तब आप अपने मस्तिष्क को पूर्णतः शांत कर पावें; परंतु यदि आप अपने पथ पर अचल रहेंगे, तो आप अपने ध्येय को अवश्य प्राप्त कर लेंगे। पर जो रास्ता उस शांति के वक़्त आपके सामने आवे, उस पर अवश्य चलना चाहिए। इसमें शक नहीं कि जब आप फिर अपने व्यवसाय में आवेंगे, कठिनाइयाँ आकर घेरेंगी और अपना प्रभुत्व जमाने लगेंगी, तो आप सोचेंगे कि यह रास्ता बिलकुल ग़लत या बेवक़ूफ़ी का है; परंतु ऐसे विचारों पर ध्यान न दीजिए। शांति-समय के निर्णय को ही अपना पूरा पथ-प्रदर्शक बनाइए, चिंता की छायाओं को नहीं। शांति का समय ज्ञान और ठीक निर्णय का समय होता है। इस

प्रकार मन को व्यवस्थित करने से भिन्न-भिन्न दिशाओं में भटकी हुई मानसिक शक्तियाँ फिर एकत्र हो जाती हैं, और निर्णय के विषय की ओर अन्वेषक प्रकाश (Search Light) की किरणों की तरह एकत्र होकर आगे बढ़ती हैं, जिसका फल यह होता है कि कठिनाई को उनके लिये रास्ता देना पड़ता है।

कोई कठिनाई, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, ऐसी नहीं, जो शांति तथा शक्ति के साथ चित्त एकाग्र करने पर जीती न जा सकती हो, और कोई न्यायानुमोदित उद्देश ऐसा नहीं, जो अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के विवेक-पूर्ण प्रयोग और संचालन से तुरंत प्राप्त न किया जा सके।

जब तक आप अपने अंतःकरण में अनुसंधान के हेतु गहरा ग़ोता न लगावेंगे और उन बहुतेरे दुश्मनों पर विजय न प्राप्त कर लेंगे, जो वहाँ पर छिपे पड़े हैं, तब तक आपको विचार-जन्य सूक्ष्म शक्तियों का अनुमानवत् ज्ञान भी नहीं हो सकेगा। न तो उसके बाहर तथा भौतिक जगत् के अभेद्य संबंध का ही आपको ज्ञान हो सकेगा। इसके अतिरिक्त समुचित रीति पर काम में लाई जाने पर ये विचार-जन्य शक्तियाँ जीवन को बदलने और सुव्यवस्थित बनाने में जादू का-सा असर दिखलाती हैं। परंतु बिना अंतःकरण को जाने और उस स्थान के शत्रुओं को पराजित किए आपको यह ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता कि उनमें ऐसी शक्ति है।

आपका हरएक विचार बाह्य जगत् में शक्ति के रूप में प्रेषित होता है। फिर वह अपने स्वभाव तथा शक्ति के अनुसार ऐसे मस्तिष्कों में निवास-स्थान ढूँढ़ता है, जो उसको ग्रहण कर सकते हैं। तत्पश्चात् वह फिर आप पर पलटा खाता है, जिसका फल चाहे बुरा हो, चाहे अच्छा। मस्तिष्क में परस्पर बराबर विचार-शक्तियों की हेरा-फेरी और अदला-बदल हुआ करता है। आपके जितने स्वार्थमय

यथा हलचल मचानेवाले विचार हैं, वे उतनी ही विनाशकारी शक्तियों का रूप धारण कर बुराइयों के दूत बन जाते हैं, जो दूसरों के दिमाग़ को उत्तेजित करने और उनकी बुराई को बढ़ाने के लिये भेजे जाते हैं, जिसका फल यह होता है कि ये दिमाग़ उनमें और भी कुछ शक्ति जोड़कर फिर उन्हें आप ही के पास वापस कर देते हैं। साथ-ही-साथ जितने शांतिमय, पवित्र और स्वार्थ-रहित विचार होते हैं, वे उतने ही दैवी दूत होते हैं, जो दुनिया में स्वास्थ्य, आरोग्यो-त्पादक शक्ति और परमानंद को बढ़ाने के साथ संसार में बुराइयों का मुक़ाबला करने के लिये भेजे जाते हैं। वे चिंता और शोक के अशांत समुद्र में तेल डालनेवाले होते हैं, और विदीर्ण हृदयों को अमरत्व का न्यायाधिकार पुनः प्राप्त कराते हैं।

अच्छे विचारों को सोचिए, और वे शीघ्र ही आपके बाह्य जीवन में अच्छी दशाओं का रूप धारण कर प्रकट होने लगेंगे। अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को वश में कर लीजिए; फिर आप अपने बाह्य जीवन को इच्छानुकूल बना सकेंगे। पापी और उद्धारक में केवल इतना ही अंतर है कि एक अपनी समस्त आंतरिक शक्तियों को पूर्णतया वश में रखता है, और दूसरा उन्हीं के वश में होकर उनका दास बन जाता है।

आत्म-शासन, आत्म-शुद्धि और आत्म-संयम के अतिरिक्त सच्ची शक्ति और स्थायी शांति प्राप्त करने का दूसरा कोई मार्ग नहीं। तबियत के झुकाव पर ही निर्भर होना अपने को निर्बल, अक्षम तथा संसार के लिये अनुपयोगी बनाना है। अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं, रुचियों तथा अरुचियों पर विजय प्राप्त करना, प्रेम तथा घृणा की खोटी वृत्तियों, क्रोध, आशंकाओं, ईर्षा तथा दूसरी क्षण-भंगुर अव-स्थाओं पर शासन करना ही, जिनके न्यूनाधिक शिकार आप बन रहे हैं, आपके सामने एक कार्य है। और, यदि आप अपने जीवन-जाल

को संपन्नता तथा परमानंद के सुनहले धागों से बुनना चाहते हैं, तो इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं। जितना ही आप अपनी आंतरिक परिवर्तनशील दशाओं के ग़ुलाम होंगे, उतना ही जीवन-यात्रा में आपको बाह्य सहायता तथा दूसरों के अवलंब की आवश्यकता होगी। यदि आप दृढ़ता-पूर्वक और सुरक्षित रहकर जीवन-यात्रा करना और कोई बड़ा काम पूरा करना चाहते हैं, तो आपको उन डावाँडोल करनेवाली तथा अवरोधक परिस्थितियों से परे होना सीखना पड़ेगा। आपको प्रतिदिन मस्तिष्क को शांतावस्था में लाने या एकांत में जाकर चिंतन करने का—जैसा प्रायः कहा जाता है—अभ्यास करना चाहिए। यही एक तरीक़ा है, जिससे आप विक्षिप्त अवस्था की जगह शांत अवस्था का स्थापन या निर्बलता के विचार की जगह सबलता के विचार का आविर्भाव कर सकते हैं। जब तक आप ऐसा करने में सफलीभूत नहीं होते, तब तक आप जीवन के प्रश्नों तथा अनुष्ठानों पर अपनी मानसिक शक्तियों को किसी अंश में भी सफलता-पूर्वक लगाने की आशा नहीं कर सकते। बिखरी हुई शक्तियों को एक प्रबल धारा में बहाने का यही एक उपाय है। जिस तरह भिन्न-भिन्न दिशाओं में बहती हुई तथा हानिकारक धाराओं को सुखाकर और उनको एक ओर अच्छी तरह से काटकर बनाई हुई खाई में बहाकर आप किसी अनुपयोगी दलदल को बहुमूल्य फ़सल के खेतों और फलदायी बाग़ों में बदल सकते हैं, ठीक उसी तरह जो कोई शांति प्राप्त कर लेता है और अपने भीतरी विचार की धाराओं को वश में करके उनकी सुव्यवस्था तथा संचालन करता है, वही अपनी आत्म-रक्षा करता है, और अपने हृदय तथा जीवन को सफल बनाता है।

ज्यों ही आप अपने क्षणिक भावों और विचारों पर पूरा आधिपत्य जमा लेंगे, आपको अपने अंदर एक बढ़ती हुई नवीन

मूक शक्ति का अनुभव होगा और आपके अंदर एक स्थायी शांति तथा शक्ति का ध्यान बराबर बना रहेगा। आपकी अंतर्हित शक्तियाँ बराबर विकसित होने लगेंगी; और जैसा कि पहले आपके उद्योग निर्बल तथा प्रभाव-शून्य होते थे, अब वह दशा न होगी; बल्कि अब आप उस शांतिमय विश्वास के साथ आगे बढ़ेंगे, जिससे सफलता शासित होती है। इस नवीन शक्ति तथा बल के विकास के साथ वह आंतरिक प्रकाश जाग्रत् होगा, जिसको लोग 'सहज ज्ञान' कहते हैं। फिर आप अंधकार तथा कल्पना-शक्ति में ही अपना जीवन न बिताकर 'प्रकाश और निश्चय' के मार्ग पर अग्रसर होंगे। इस आत्म-दर्शन के साथ आपकी निर्णयात्मक तथा मानसिक ग्रहण की सामर्थ्य बेहिसाब बढ़ जायगी, और आपके अंदर उस अलौकिक दिव्य दृष्टि का आविर्भाव होगा, जिसकी सहायता से सारी भावी घटनाएँ आपको मालूम हो जायँगी, और आप अपने उद्योगों के फल को पहले से बिलकुल ठीक ठीक ऐसा बतला सकेंगे कि जिसकी प्रशंसा करना कठिन होगा। ठीक उसी अंश में जितना आप अपने अंदर परिवर्तन करेंगे, आपके बाह्य जीवन के दृष्टि-कोण में भी परिवर्तन होगा। जब आप दूसरों के प्रति अपनी मानसिक वृत्ति बदल देंगे, तो उसी अंश तक दूसरे भी अपने मानसिक विचारों और चाल को आपके संबंध में बदल देंगे। जैसे-जैसे आप अपनी तुच्छ, हीनावस्था को पहुँचानेवाली तथा विनाशकारी विचार-तरंगों को छोड़ते जायँगे, वैसे-वैसे वास्तविक, बल-वर्द्धक तथा उन्नतिशील विचार-तरंगों से आपका संपर्क होता जायगा, और उन तरंगों के उत्पन्न करनेवाले दूसरे ही शक्तिशाली, पवित्र तथा उच्च मस्तिष्क होंगे। आपकी प्रसन्नता बेहिसाब बढ़ जायगी। आप आत्म-शासन-जन्य आनंद, शक्ति तथा बल का अनुभव करने लगेंगे। यह प्रसन्नता, बल तथा शक्ति, क्रमशः बिना आपकी ओर से किसी प्रकार

का उद्योग हुए ही, आप-से-आप पैदा हुआ करेगी। इतना ही नहीं, बल्कि चाहे आपको उसका ज्ञान भी न हो, परंतु तब भी शक्ति-शाली पुरुष आपकी ओर खिंच आवेंगे। शक्ति तथा प्रभाव आपके हाथ में आ जायँगे; और आपके परिवर्तित विचार-संसार के अनुसार ही बाह्य घटनाएँ भी अपना रूप धारण करेंगी।

मनुष्य के शत्रु उसी के घरवाले होते हैं। जो व्यक्ति शक्तिशाली, कार्य-कुशल तथा प्रसन्नचित्त रहना चाहता है, उसको निषेधात्मक दरिद्रता तथा अपवित्रता के भावों का पात्र बनना छोड़ देना चाहिए। जिस तरह एक बुद्धिमान् गृहस्थ अपने नौकरों को आज्ञा देता है और मेहमानों को निमंत्रित करता है, उसी तरह उसको अपनी इच्छाओं पर शासन करना और डाँटकर यह कह देना सीखना चाहिए कि हम किन-किन विचारों को अपने आत्म-भवन में प्रवेश करने की आज्ञा देने के लिये उद्यत हैं। स्वाधिपत्य स्थापन की थोड़ी-सी भी सफलता मनुष्य की शक्ति को बेहद बढ़ा देती है, और जो मनुष्य उस दैवी पवित्र साधना में पूर्णतः सफल हो जाता है, वह आंतरिक शक्ति, शांति और कल्पनातीत बुद्धि का अधिकार प्राप्त कर लेता है। उसको अनुभव होने लगता है कि विश्व की तमाम शक्तियाँ उस मनुष्य के पथ में सहायक तथा रक्षक होती हैं, जिसने अपने ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है।

पद्य का अनुवाद

यदि आप सर्वोच्च स्वर्ग प्राप्त करना चाहें या निकृष्ट नरक में घुसना चाहें, तो आपको क्रमशः अपरिवर्तनशील सौंदर्य के रूप की भावना में जीवन व्यतीत करना चाहिए या नीचातिनीच विचार में संलग्न रहना चाहिए, क्योंकि आपके विचार ही आपके ऊपर स्वर्ग और नीचे नरक हैं। अगर परमानंद है, तो वह विचार में ही है; और कोई दुःख ऐसा नहीं है, जो विचार-जगत् से परे का हो।

अगर विचार नष्ट हो जायँ, तो संसार भी लुप्त हो जाय। अगर विजय है, तो विचार में ही है; और सब गुणों का नाटक भी प्रति-दिन के विचार से ही उत्पन्न होता है।

इज्जत, लज्जा, चिंता, दुःख, विलाप, प्रेम तथा घृणा सभी केवल उस शक्तिशाली भाग्य पर शासन करनेवाले गतिमय विचार को परदे से छिपानेवाले हैं।

जिस तरह इंद्र-धनुष के तमाम रंग एक वर्ण-विहीन किरण उत्पन्न करते हैं, उसी तरह विश्वव्यापी परिवर्तनशील दशाएँ मिलकर एक ही शाश्वत स्वप्न * उत्पन्न करती हैं।

यह स्वप्न बिलकुल आपके अंदर की वस्तु है और स्वप्न देखनेवाला प्रभात की दीर्घ प्रतीक्षा में लीन रहता है कि प्रभात मुझको जगाकर जीवित शक्ति-संपन्न विचारों का ज्ञाता बना दे और उस शक्तिशाली का ज्ञान करा दे, जिसकी वजह से आदर्श को वास्तविकता का रूप प्राप्त होता है। प्रभात नरक के स्वप्नों को मिटाकर उनके स्थान पर

---

* संसार को स्वप्न माना है।

सर्वोच्च-तथा ऐसे पवित्र स्वर्ग को स्थापित कर देता है, जहाँ पर पवित्र तथा पूर्ण रूप प्राप्त आत्माएँ निवास करती हैं।

बुराई और भलाई केवल सोचनेवाले के विचार में होती है। इसी तरह प्रकाश तथा अंधकार, पाप तथा पुण्य भी बिलकुल विचार से ही उत्पन्न होते हैं।

सबसे बड़े का मनन करो, तो तुम्हें सबसे बड़े की प्राप्ति हो जायगी। सर्वोच्च का चिंतन करो, तो तुम स्वयं सर्वोच्च हो जाओगे।

पाँचवाँ अध्याय

स्वास्थ्य, सफलता और शक्ति का रहस्य

हम सबको अच्छी तरह से स्मरण है कि कैसी प्रसन्नता के साथ हम लड़कपन में परियों के क़िस्से सुना करते थे। उनको सुनने में हम कभी थकते नहीं थे। हम सुंदर बालक-बालिकाओं की हरएक दशा पर रंग बदलनेवाली भाग्य का कहानियों को किस चाव और ध्यान से कान लगाकर सुनते थे, जिनकी संकट के समय में क्रूर राक्षसों, अत्याचारी बादशाहों और धूर्त मायाविनियों के षट्यंत्रों से सदैव रक्षा हो जाती थी। हमारे तुच्छ हृदय उन वीरों तथा वीरांगनाओं के भाग्य पर कभी नहीं काँपते थे और न उनकी अंतिम विजय पर कभी हमको शंका होती थी; क्योंकि हम जानते थे कि परियों से कभी ग़लती हो नहीं सकती और कभी संकट के समय में भी सत्य तथा सत्कार्य पर अपने को न्यौछावर करनेवालों का विजय साथ नहीं छोड़ सकती। जब कभी परियों की रानी अपने जादू से संकट के समय में तमाम अंधकार और कठिनाइयों को दूर भगाकर अपने भक्तों की आशाओं को सब तरह से पूरा कर देती थी और तदुपरांत वे बराबर सुखी रहते थे, तो हमारे अंदर कैसी अवर्णनीय प्रसन्नता होती थी!

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और जीवन की वास्तविकता से बराबर परिचय बढ़ता गया, हमारा वह सुंदर परी-संसार भूलता गया और स्मरण-शक्ति के उद्यान में उसके आश्चर्य-जनक निवासी बिलकुल छाया और अंधकार में पड़ गए। फिर हम सोचने लगे कि हम लोगों ने बचपन के इन स्वप्नों को एकदम छोड़ दिया, यह

हमारी बुद्धिमानी और शक्ति थी। लेकिन जब बुद्धि के विस्मय-जनक जगत् में हम फिर छोटे-छोटे बालक बन जाते हैं, तो हमको बाल्यावस्था के उन प्रोत्साहन दिलानेवाले स्वप्नों की पुनः शरण लेनी पड़ती है और हमको पता चलता है कि अंत में वे ही सत्य हैं।

ये परियाँ बहुत ही छोटी और लगभग सदैव अदृश्य होते हुए भी सबको जीतनेवाली और जादू की शक्ति की अधिष्ठात्री होती हैं। वे अच्छे मनुष्यों पर प्रकृति के प्रचुर प्रसाद ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, संपत्ति और प्रसन्नता की भी वर्षा करती हैं। जब मनुष्य अपनी बुद्धि की वृद्धि कर विचार-जन्य शक्ति तथा जीवनमय जगत् के भीतरी प्रधान नियमों का ज्ञाता बन जाता है, तो ये परियाँ पुनः सत्य प्रतीत होने लगती हैं और उसकी आत्मा के अंदर अमरत्व पाती हैं। उनके लिये ये परियाँ फिर विचार-जगत् की निवासिनी, दूत और शक्ति बन जाती हैं और सच्चिदानंद के प्रधान नियमों के अनुकूल चलनेवाली हो जाती हैं। जो लोग प्रतिदिन परमेश्वर के हृदय के साथ अपने हृदय को एक-स्वर या एक-रंग बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे ही वास्तव में सच्ची तंदुरुस्ती, ख़ुशी और दौलत हासिल कर सकते हैं। सदाचार के समान रक्षा करनेवाली कोई दूसरी वस्तु नहीं। सदाचार से मेरा केवल इतना ही मतलब नहीं है कि केवल उसके बाह्य नियमों का पालन किया जाय। सदाचार से मेरा अर्थ पवित्र विचार, उच्चाकांक्षा, स्वार्थ-रहित प्रेम और झूठी शेख़ी से मुक्ति है। बराबर अच्छे विचारों का ही चिंतन करना शक्ति और माधुर्य के आध्यात्मिक वायु-मंडल को अपने चारो ओर उत्पन्न करना है और इसकी छाप इससे संपर्क होनेवाले पर बिना लगे नहीं रहती।

जिस तरह प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के सामने विवश अंधकार को भाग जाना पड़ता है, उसी तरह सच्चे विश्वास तथा पवित्रता से प्रौढ़ हृदय से उत्पन्न विचारों की चमकीली किरणों के

सामने तमाम अवांछित निर्बल अवस्थाओं को भी भाग जाना पड़ता है।

जहाँ पर सच्चा अटल विश्वास और अमिट पवित्रता है, वहीं स्वास्थ्य है, वहीं सफलता है, वहीं शक्ति है। ऐसे मनुष्य में रोग, विफलता और विपत्ति टिक नहीं सकती, क्योंकि वहाँ उनके भोजन की कोई सामग्री ही नहीं।

मानसिक अवस्था से ही, अधिकांश दशाओं में शारीरिक अवस्था का भी निर्णय किया जाता है। विज्ञान-संसार भी इसी सत्य की ओर क्रमशः शीघ्रता के साथ खिंचा आ रहा है। इस प्राचीन भौतिक विश्वास का कि मनुष्य अपने शरीर का ही बना हुआ एक पुतला होता है, शीघ्रता से लोप हो रहा है। इसके स्थान पर अब यह प्रोत्साहनोत्पादक विश्वास लोगों में फैल रहा है कि मनुष्य इस शरीर से भी बढ़कर कोई चीज़ है; और उसका शरीर केवल उसकी विचार-जन्य शक्ति की सहायता से बनी हुई एक वस्तु है। हरएक स्थान के लोगों से यह विश्वास हटता जा रहा है कि निराशा का कारण मंदाग्नि होती है। बल्कि इसके बदले अब उनकी धारणा यह हो रही है कि निराशा-पूर्ण जीवन व्यतीत करना ही अपच का कारण होता है; और निकट भविष्य में जन साधारण यह बात जान जायँगे कि तमाम बीमारियों की उत्पत्ति मस्तिष्क में ही होती है।

संसार की कोई बुराई ऐसी नहीं, जिसकी जड़ और उत्पत्ति मस्तिष्क में ही न हो। वास्तव में पाप, शोक, रोग और विपत्ति विश्व की वस्तुओं में नहीं हैं और न ये इन वस्तुओं के स्वाभाविक गुण के ही कारण उत्पन्न होती हैं, बल्कि ये तमाम वस्तुओं के पारस्परिक संबंध की अज्ञानता के फल हैं।

परंपरागत कथाओं के अनुसार किसी समय में भारत के तत्त्व-वेत्ताओं का एक संप्रदाय ऐसी निष्कलंक पवित्रता और सादगी का

जीवन व्यतीत करता था कि साधारणतया वे १६० वर्ष तक जीवित रहते थे। और बीमार पड़ना तो उनके लिये एक अक्षम्य अपराध था; क्योंकि यह नियम-भंग का सूचक एक चिह्न समझा जाता था।

जितना ही शीघ्र हम अनुभव करके यह बात मान लेंगे कि बीमारी क्रोधदेव का अनियमित दंड या बुद्धि-हीन परमात्मा की परीक्षा नहीं है, बल्कि हमारी ही त्रुटि या पाप का फल है, उतना ही जल्द हम आरोग्यता की सीढ़ी पर चढ़ने लगेंगे। बीमारी उन्हीं के पास आती है, जो उसको आकृष्ट करते हैं, जिनका दिमाग़ और शरीर उनको अपना सकता है; और उनसे कोसों दूर भागती है, जो अपने पवित्र, दृढ़ और सच्चे विचार-महल से स्वास्थ्य-दायक तथा जीवन-प्रदायक धाराएँ उत्पन्न करते हैं।

अगर आप क्रोध, चिंता, ईर्ष्या, लोभ या और किसी असंगत मानसिक अवस्था के वश में हो गए हैं और फिर भी पूर्ण स्वास्थ्य की आशा रखते हैं, तो आप असंभव बात का स्वप्न देख रहे हैं; क्योंकि आप लगातार अपने दिमाग़ में रोग का बीज बो रहे हैं। बुद्धिमान लोग ऐसी मानसिक अवस्थाओं से सावधान होकर घृणा करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ये एक गंदे नाले या दूषित मकान से कहीं अधिक खतरनाक हैं।

अगर आप तमाम शारीरिक पीड़ाओं और कष्टों से अलग रहना चाहते हैं और पूर्ण स्वास्थ्य का आनंद लेना आपको अभीष्ट है, तो आप अपना दिमाग़ ठीक कीजिए और अपने विचारों को एक रंग के बनाकर उनमें एकता लाइए। आनंददायी विचारों को सोचिए, प्रेम-पूर्ण विचारों का ही चिंतन कीजिए और सदिच्छा के रसायन को अपनी रगों में प्रवाहित होने दीजिए। फिर किसी दूसरी ओषधि की आवश्यकता ही न होगी। अपनी ईर्ष्या, अपनी आशंका, अपनी चिंता और घृणा तथा स्वार्थ-पूर्ण भोग-विलास को दूर भगाइए। फिर आपकी

मंदाग्नि, कफ-पित्त-विकार, अजीर्ण तथा पीड़ा देनेवाली गठिया स्वयं दूर भाग जायगी। अगर आप इस नैतिक मार्ग से च्युत करनेवाले तथा तुच्छ अभ्यास में हठात् पड़े हों, तो फिर चारपाई थामने पर आप हाय-हाय न कीजिएगा।

मानसिक प्रवृत्तियों और शारीरिक अवस्थाओं का घनिष्ठ संबंध निम्नांकित कथा से स्पष्ट हो जाता है। एक मनुष्य कष्टदायी रुग्णावस्था में पड़ गया। उसने एक के बाद दूसरे वैद्य की दवा की, परंतु कुछ फल न हुआ। फिर वह उन स्थानों पर गया, जहाँ के पानी में रोग दूर करने का गुण बतलाया जाता था। उनमें स्नान करने पर उसका रोग पहले से भी अधिक दुःखदायी हो गया। एक रात्रि को उसने स्वप्न देखा कि एक दैवी दूत आकर कह रहा है—"भाई, क्या तुमने तमाम चिकित्साओं की परीक्षा कर ली?" उसने जवाब दिया—"हाँ, मैंने सबकी परीक्षा कर ली।" इसका प्रत्युत्तर उस दैवी दूत ने दिया—"नहीं, तुम मेरे साथ आओ और मैं तुमको रुग्णावस्था से मुक्त करनेवाला एक प्रकार का ऐसा स्नान बतलाऊँगा, जिस पर अब तक तुम्हारी निगाह नहीं पड़ी है।" वह रोगी उस दूत के पीछे हो लिया। दूत ने उस रोगी को स्वच्छ जल के तालाब के पास ले जाकर कहा—"इस पानी में तुम स्नान कर लो, और तुम अवश्य अच्छे हो जाओगे।" यह कहकर वह दूत लुप्त हो गया। उस रोगी ने उस पानी में गोता लगाया और बाहर आने पर उसको मालूम हुआ कि उसका रोग चला गया; परंतु तत्काल ही उसको तालाब के ऊपर 'त्याग' शब्द लिखा दिखलाई पड़ा। जागने पर स्वप्न का पूरा मतलब उसके दिमाग़ में बिजली की तरह चमक उठा और अंत में अपने अंतःकरण की परीक्षा करने पर उसको पता चल गया कि अब तक वह बराबर पापमय भोग-विलास का आखेट रहा। तुरंत ही उसने उनको सदैव के लिये छोड़ देने का संकल्प कर लिया। उसने अपना

अनुष्ठान पूरा किया। उसी दिन से उसकी विपत्ति (रोग) दूर होने लगी और थोड़े ही समय में वह फिर पूर्ण स्वस्थ हो गया।

बहुतों की शिकायत होती है कि बहुत काम करने से हमारा स्वास्थ्य बिगड़ गया। ऐसी अवस्था की अधिकांश दशाओं में स्वास्थ्य का बिगड़ना उनकी बेवक़ूफ़ी से शक्ति खोने का फल होता है। अगर आप अपनी तंदुरुस्ती कायम रखना चाहते हैं, तो आपको बिना झगड़ा-झंझट किए काम करना सीखना चाहिए। अनावश्यक बातों में पड़कर चिंतित होना, जोश में आना तथा उन पर बराबर सोचना विनाश को निमंत्रित करना है। काम, चाहे मानसिक हो या शारीरिक, स्वास्थ्यदायक और लाभकारी होता है। जो आदमी तमाम चिंताओं और विषादों से मुक्त होकर, शांति तथा दृढ़ता के साथ लगातार काम करता जायगा और अपने काम से ही काम रक्खेगा, बाक़ी बातों को भूल जायगा, वह उस मनुष्य से जो बराबर चिंतित रहता है और जल्दबाज़ी का भूत जिस पर हमेशा सवार रहता है, अधिक काम ही नहीं कर पावेगा, बल्कि वह अपनी तंदुरुस्ती को भी क़ायम रक्खेगा, जो कि एक नियामत है और जिसे दूसरा तुरंत खो देगा।

सच्ची तंदुरुस्ती और सच्ची सफलता सहगामिनी होती हैं; क्योंकि विचार-जगत् में उनका अन्योन्याश्रय संबंध है। वे एक दूसरी से पृथक् नहीं की जा सकतीं। जिस तरह से चित्त को एकाग्र और शांत रखने से दैहिक स्वास्थ्य की उत्पत्ति होती है, उसी तरह उससे प्रत्येक कार्य को ठीक तौर से पूरा करने में क्रमशः सहायता मिलती है। अपने विचारों को व्यवस्थित कर लीजिए; फिर आपका जीवन नियमित बन जायगा। इंद्रिय-लोलुपता तथा अनुचित पक्षपात के विक्षुब्ध समुद्र पर शांति का तेल छोड़ दीजिए। फिर विपत्तियों के झोंके, चाहे वे कितनी ही धमकी दें, आपकी आत्मनौका को नहीं

तोड़ सकते और वह नौका जीवन-समुद्र को पार कर जायगी।

यदि उस नौका का कर्णधार सुखदायी अटूट विश्वास हो, तो उसका पार होना और भी निश्चित तथा सरल हो जायगा; और अनेक विपत्तियाँ जो अन्यावस्था में आक्रमण करतीं, दूर भाग जायँगी। विश्वास की शक्ति से हरएक कठिन कार्य पूरा हो जाता है। सर्व-शक्तिमान् में विश्वास करना, सब पर शासन करनेवाले नियम में विश्वास रखना, अपने काम में भी विश्वास स्थापन करना और उस कार्य को पूरा करनेवाली अपनी शक्ति पर भरोसा रखना ही एक ऐसी चट्टान है, जिस पर, अगर आप संसार में रहना चाहते हैं और गिरना नहीं चाहते तो, आपको अपना मकान बनाना चाहिए। तमाम हालतों में अंतःकरण के सर्वोच्च भावों (उद्गारों) का मानना, उस पवित्र आत्मा के प्रति सदैव सच्चे बने रहना, अंतःकरण के ही प्रकाश तथा वाणी पर भरोसा रखना, अपने कार्य को निर्भय तथा शांत हृदय से संपादन करना, यह विश्वास रखना कि भविष्य में हमारे प्रत्येक विचार तथा यत्न का समुचित फल मिलेगा, यह जानना कि विश्वव्यापी नियम कभी ग़लत नहीं हो सकते और इस बात को मानना कि आपकी जैसी भावना होगी, गणित के नियमानुसार ठीक वैसा ही फल आपको मिलेगा, बस यही सच विश्वास है और विश्वास पर चलना है। इस विश्वास की शक्ति के सामने अनिश्चय का काला समुद्र सूख जायगा, कठिनाइयों का पहाड़ चकनाचूर हो जायगा और विश्वास करनेवाली आत्मा बिना क्षति उठाए अपने पथ को पार कर जायगी। ऐ मेरे प्यारे पाठको! हरएक चीज़ों से बढ़कर इस अमूल्य अटल धैर्य-युक्त विश्वास को प्राप्त कीजिए; क्योंकि परमानंद, शांति और शक्ति का, संक्षेप में हरएक वस्तु का जो जीवन को महान् और विपत्ति सहने योग्य बनानेवाली होती है, यही कवच है। ऐसे ही विश्वास पर आप अपना भवन निर्माण कीजिए। उसकी बुनियाद

और समस्त सामग्री अनंत शक्ति होगी। इस प्रकार से बना हुआ भवन कभी नष्ट नहीं हो सकता; क्योंकि यह तमाम भौतिक भोग-विलास और धन की सामग्री से बढ़कर होगा। भौतिक वस्तुओं का अंत मिट्टी में मिल जाना होता है। चाहे आप शोक-सागर में फेंक दिए जायँ, चाहे आप आनंद के शिखर पर विराजमान हों, परंतु इस विश्वास पर हमेशा अधिकार रखिए, सदैव इसी को अपना शरणागार समझिए और इसी के अमर तथा स्थिर आधार पर अपने पैर दृढ़ता से जमाए रखिए। ऐसे विश्वास में केंद्रस्थ हो जाने पर आपमें वह आध्यात्मिक शक्ति आ जायगी, जो आप पर आई हुई तमाम अवांछनीय शक्तियों को शीशे के खिलौने की तरह नष्ट-भ्रष्ट कर देगी। इसके अतिरिक्त आपको वह सफलता प्राप्त होगी, जिसको सांसारिक लाभ पर जान देनेवाला न तो कभी जान सकता और न स्वप्न में उसे जिसका ख़याल ही हो सकता है। अगर आपमें विश्वास है और किसी प्रकार की शंका आपमें नहीं है, तो आप केवल इतना ही न करेंगे, बल्कि यदि आप किसी पर्वत से कहेंगे कि तू दूर हो जा, यहाँ से हट जा और समुद्र में डूब जा, तो भी आपकी आज्ञा का पालन होगा।

आज भी ऐसे रक्त-मांस के स्थायी वास करनेवाले लोग हैं, जो इस विश्वास का अनुभव कर चुके हैं और इसी पर अब उनकी दिनचर्या निर्भर है। ऐसे भी स्त्री-पुरुष विद्यमान हैं, जो इसकी अत्यंत कठिन परीक्षा कर अब शांति तथा विजय का भोग कर रहे हैं। उन लोगों ने आज्ञा दे दी है, जिससे शोक तथा निराशा, मानसिक व्यथा तथा शारीरिक पीड़ा के पहाड़ हटकर अब उनके पास से अलग जाकर विस्मृति के समुद्र में डूब गए हैं। अब उनका नामोनिशान भी नहीं रहा।

अगर आप इस विश्वास को प्राप्त कर लें, तो भविष्य की सफलता तथा विफलता के विषय में चिंतित रहने की आवश्यकता आपको

न होगी। सफलता स्वयं पाँव तोड़कर आपके सामने बैठजायगी। आपको फिर फल के विषय में चिंतित होना न पड़ेगा; बल्कि यह जानकर कि सत्य विचार और सत्य उद्योग का फल अवश्य ही सत्य होगा, आप प्रसन्नता तथा शांति के साथ अपने काम करते जायँगे।

मैं एक ऐसी स्त्री को जानता हूँ, जिसने अनेक परमानंददायी संतोष-जनक अवस्थाओं का उपभोग किया है। थोड़े ही दिनों की बात है कि एक मित्र ने उससे कहा—"अहा! तुम कैसी भाग्य-शाली हो! तुम्हें तो किसी चीज़ की इच्छा-मात्र करने की आवश्यकता है। फिर वह स्वयं आ जाती है।" ऊपर से तो ऐसा ही मालूम होता था; पर वास्तव में ये जो समस्त परम सुख जीवन के अंतर्गत ही उसको प्राप्त हुए हैं, वे उसकी जीवन-पर्यंत उद्योग करके प्राप्त की हुई अंतःकरण की पवित्रता के ठीक फल स्वरूप हैं। वह बराबर इस पवित्रता को परम पद की प्राप्ति में परिवर्तित करने का प्रयत्न करती रही। केवल इच्छा करने से निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। जिस बात का प्रभाव पड़ता है, वह जीवन है। बेवक़ूफ़ लोग बराबर इच्छा करते और कुढ़ा करते हैं। बुद्धिमान् लोग कार्य के फल की प्रतीक्षा करते हैं। इस स्त्री ने कार्य किया है; कोशिश की है। भीतर-बाहर दोनों तरफ़ से इसने यत्न किया है और विशेषकर अपने दिल और आत्मा को इसने ठीक किया है। विश्वास, आशा, प्रसन्नता, भक्ति और प्रेम के बहुमूल्य पत्थरों को लेकर आत्मा के अदृश्य सिद्ध हाथों से इसने प्रकाश का एक सुंदर मंदिर तैयार किया है। उस मंदिर से निकलती हुई प्रभावशाली किरणें सदैव उसको आच्छादित किए रहती हैं। यश उसकी आँखों से निकलता है, ख्याति उसके चेहरे से टपकती है और प्रताप की झनकार उसकी वाणी में स्पष्ट सुनाई पड़ती है। जो कोई उसके सम्मुख जाता है, उसके हृदयग्राही जादू का अनुभव करता है।

लेकिन जैसी उसकी दशा थी, वैसी ही आपकी भी है। आप अपने साथ अपनी सफलता, अपनी विफलता, अपने प्रभाव और अपने पूर्ण जीवन को लिए फिरते हैं, क्योंकि आपके विचारों की प्रधान प्रवृत्ति ही आपके भाग्य का निर्णय करती है। प्रेममय, पवित्र तथा प्रसन्नता के विचारों को आप बाहर लाइए। फल यह होगा कि सुख आपके हाथों में कलरव करेगा, आपके कमरे में शांति का निवास होगा। घृणा, अपवित्रता और अप्रसन्नता के विचार उत्पन्न करने से विपत्ति-आपत्ति की वर्षा होगी और भय तथा अशांति शयनगृह में आपको घेरे रहेंगी। चाहे आपका भाग्य जैसा हो, परंतु आप ही उसके निर्णायक हैं। इसमें कुछ भी चूँ-चरा के लिये स्थान नहीं। हरएक क्षण आप ऐसी शक्तियों को संसार में भेज रहे हैं, जो आपके जीवन को बना या बिगाड़ सकती हैं। अपने हृदय को वृहद् प्रेमागार तथा स्वार्थ-रहित बनाइए। फिर चाहे आप अधिक धन पैदा न कर सकें, परंतु सफलता और प्रभाव आपकी चिरस्थायी भारी संपत्ति बनकर आपके पाँव पड़ेंगे। स्वार्थ की संकीर्ण सीमा के अंदर ही अपने हृदय को नज़रबंद कर दीजिए। फिर आप चाहे करोड़पती ही क्यों न हो जायँ, परंतु अंत समय में हिसाब करने पर आपका प्रभाव और सफलता नितांत तुच्छ निकलेगी।

पवित्र तथा स्वार्थ-रहित आत्मा का विकास कीजिए और पवित्रता, विश्वास तथा उद्देश्य की एकता से उसका संयोग करा दीजिए। फल यह होगा कि आपके अदर से पूर्ण स्वास्थ्य और चिरस्थायी सफलता की ही नहीं, बल्कि प्रधानता और अधिकार की सामग्री विकसित होकर निकल पड़ेगी।

चाहे आपका वर्तमान पद आपके मन का न हो और आपका दिल काम में न लगता हो, तो भी दिल लगाकर परिश्रम के साथ अपने कर्तव्य का पालन कीजिए। साथ-ही-साथ यह सोचकर कि इससे

अच्छा पद और इससे कहीं उत्तम अवसर आपकी प्रतीक्षा कर रहा है, अपने मन को शांत रखिए, सदैव संभावना की खिलती डालियों पर दिव्य चक्षु लगाए रखिए, जिसमें जब संकट का समय आवे और नवीन अवसर प्राप्त हो, तो आप उस कार्य को अच्छी तरह से तुरंत संपादन करने के लिये तैयार रहें और अपने हाथ में लेकर सहिष्णुता-जन्य बुद्धि तथा दूरदर्शिता के साथ इस काम को अंजाम दे सकें।

आपका काम चाहे जो कुछ हो; आप अपने दिमाग़ को उसी पर लगा दीजिए। अपनी पूरी शक्ति को लेकर जुट जाइए। छोटे-छोटे कार्यों को बिना ग़लती किए पूरा करना बड़े कामों के लिये रास्ता बनाना है। इसका ध्यान रखिए कि आप साबित-क़दमी से ऊपर जा रहे हैं। फिर आपका अधःपतन कभी न होगा; और इसी में सच्ची शक्ति का पूर्ण रहस्य है। लगातार अभ्यास करके यह बात सीखिए कि अपनी सामग्री का मितव्ययता के साथ उपयोग कैसे किया जा सकता है और किसी समय उनको किसी विशेष बात पर कैसे लगाया जा सकता है। मूर्ख अपनी सारी मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्ति को बेवक़ूफ़ी के वार्तालाप, स्वार्थमय बहसों तथा निरर्थक व्यापार में नष्ट कर देता है; और शारीरिक इच्छाओं की बेहूदा हरकतों में उसकी जो शक्ति नष्ट हो जाती है, उसका तो ज़िक्र ही छोड़ दीजिए।

अगर आपको विजयकारी शक्ति का उपार्जन अभीष्ट है, तो आपको निश्चेष्टता तथा समवर्तता का अभ्यास करना चाहिए। निश्चलता के साथ ही सारी शक्ति बँधी हुई है। पहाड़, बड़ी-बड़ी चट्टानें, अंधड़ों में खड़े रहनेवाले सनोबर के वृक्ष इसलिये शक्तिशाली होते हैं कि उनकी संबद्ध एकता और सदर्प अविचलता सराहनीय है। इसके विपरीत पृथक् हो जानेवाली रेत, झुकनेवाली टहनियाँ और झूमते हुए नरकट के वृक्ष इसलिये निर्बल होते हैं कि वे अपना स्थान छोड़ देते हैं और उनमें प्रतिरोध की शक्ति नहीं होती।

जब वे अपने सजातियों से विलग कर दिए जाते हैं, तो वे अनुपयोगी हो जाते हैं। वही मनुष्य शक्तिशाली है, जो राग और इंद्रिय-वेदना होने पर भी जिस वक़्त उसके साथी डिग जाते हैं, अपनी शांति को क़ायम रखता है और डिगता नहीं।

वही संचालन और शासन करने के योग्य है, जो आत्म-संयम और आत्म-शासन में सफलता प्राप्त कर चुका हो। विक्षिप्त, भीरु, विचार-हीन तथा निरर्थक वार्तालाप करनेवालों को साथी ढूँढने की आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा सहारा न होने से वे गिर जायँ। परंतु शांत, निर्भीक, विचारवान् और गभीर को जंगल, मरुभूमि तथा पर्वत-शिखर की निर्जन भूमि ही शोभा देती है। उनकी शक्ति में नवीन शक्ति जुटती जायगी। उन आध्यात्मिक धाराओं तथा भ्रमणों को वे और भी सफलता के साथ रोक और पार कर सकेंगे, जिनके कारण मनुष्य एक दूसरे से पृथक् होते हैं।

मनोत्तेजना शक्ति नहीं। यह तो शक्ति का दुर्व्यवहार है और शक्ति को तितर-बितर करना है। मनोत्तेजना तो एक भयानक आँधी है, जो संबद्ध चट्टान पर ज़ोरों से और भयंकर रूप से टक्कर मारती है। इसके विपरीत शक्ति उस चट्टान के सदृश है, जो इन सबके होते हुए भी शांत और निश्चल रहती है। जिस समय मार्टिन लूथर (Martin Luther) ने अपने विकट मित्रों की बातों से आजिज़ आकर कहा था कि अगर "वार्म्स (Worms) में उतने ही राक्षस-वृत्ति के लोग हों, जितने कि इस मकान की छत पर खपरैल हैं, तो भी मैं वहाँ जाऊँगा।" उस समय उसने अपनी सच्ची शक्ति का परिचय दिया था। लूथर के मित्रों को आशंका थी कि उसके वहाँ जाने से उसकी जान ख़तरे में पड़ जायगी। जिस वक़्त बेंजमिन डिसरेली (Benjamin Disraeli) ने अपनी पार्लिमेंट की प्रथम वक्तृता में कुछ गड़बड़ा और लोग उस पर हँसने लगे, उस वक़्त उसने यह

कहकर अपनी उत्पादक-शक्ति का परिचय दिया था कि वह दिन भी शीघ्र ही आवेगा, जिस दिन आप लोग मेरा भाषण सुनने में अपना गौरव समझेंगे।

जिस वक़्त उस नौजवान ने, जिसको कि मैं जानता हूँ, लगातार विपत्ति-आपत्ति के आने पर और बराबर भाग्य के धोखा देने पर लोगों से हँसकर कहा था कि अब आगे कोशिश करना छोड़ दो और दूसरा रास्ता देखो, उस वक़्त उस नवयुवक ने उत्तर दिया था कि वह समय दूर नहीं है, जब आप लोग मेरी सफलता और मेरे सौभाग्य पर विस्मित होंगे। सचमुच उस वक़्त उसने दिखला दिया था कि उसमें वह मूक और अचूक शक्ति छिपी थी, जिसकी सहायता से असंख्य कठिनाइयों को पार करके उसने अपने जीवन को विजय का मुकुट पहनाया था।

अगर आपमें वह शक्ति नहीं है, तो अभ्यास से आप उसको पैदा कर सकते हैं। इस शक्ति के प्रारंभ होने के साथ-ही-साथ बुद्धि-विवेक का प्रारंभ होता है। आपको पहले उन निरर्थक तुच्छ बातों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, जिनके आप अब तक स्वेच्छा-पूर्वक आखेट बन रहे थे। झूठ-मूठ और व्यर्थ का ऐसा ठहाका लगाना जिसको आप रोक ही न सकते हों, दूसरों की बुराई करना तथा निरर्थक वार्तालाप और केवल हँसने के लिये दिल्लगी करना आदि बातों को अपनी अमूल्य शक्ति का अनावश्यक व्यय समझकर छोड़ देना चाहिए। सेंटपाल (Saint Paul) मनुष्यों की गुप्त प्रकृति का अच्छा ज्ञाता था और अपने ज्ञान का कभी-कभी परिचय भी दे देता था। परंतु जिस वक़्त उसने एफ़ेसिया (Ephesious) के लोगों को निम्नांकित आज्ञा दी थी, उस समय उसने कमाल किया था—"देवकूफ़ों की बातचीत और हँसी-दिल्लगी से बचना, क्योंकि ऐसी बातों की आदत डालना आध्यात्मिक शक्ति तथा जीवन को नष्ट करना है।" ज्यों ही आप इन मान-

सिक बर्बादियों से बचने लगेंगे, त्यों ही आपको पता चलने लगेगा कि सच्ची शक्ति क्या है; और आप इससे भी ज़ोरावर अपनी इच्छाओं से छेड़खानी कर उनको निकालना आरंभ कर देंगे; क्योंकि उन्हीं के कारण आपकी आत्मा जकड़ी हुई है और आपकी उन्नति में बाधा पहुँचती है। फिर आपकी भावी उन्नति का रास्ता साफ़ हो जायगा।

सबसे पहले तो आपका एक उद्देश्य होना चाहिए। अपना एक उपयोगी न्यायानुमोदित लक्ष्य रख लीजिए और उसी पर अपनी सारी शक्ति लगा दीजिए। किसी बात से न डिगिए; क्योंकि यह याद रखने की बात है कि दो नाव पर चढ़नेवाला आदमी बराबर हरएक काम में चंचल रहेगा। सीखने की दृढ़ इच्छा रखिए, लेकिन हाथ पसारने में बहुत शीघ्रता न कीजिए। आप अपना काम अच्छी तरह समझ लीजिए। उसको अपना निज का काम समझिए। ज्यों-ज्यों आप आतरिक पथ-प्रदर्शक के अनुयायी बनकर अभ्रांत आज्ञाओं तथा अंतःकरण को मानकर आगे बढ़ते जायँगे, त्यो-त्यों आप एक के उपरांत दूसरी विजय प्राप्त करते जायँगे और क्रमशः इससे भी उच्च विश्राम स्थान पर पहुँचते जायँगे; आपकी प्रतिक्षण बढ़ती हुई दिव्य दृष्टि आपके जीवन का वास्तविक सौंदर्य तथा उद्देश्य दिखला देगी। आत्मा के पवित्र होने पर स्वास्थ्य आपका चेला हो जायगा; विश्वास से सुरक्षित होने पर सफलता आपकी दासी बन जायगी; और आत्मा को क़ाबू में रखने पर शक्ति आपकी ग़ुलाम होकर रहेगी। इसके अतिरिक्त जो कुछ आप करेंगे, उसमें बराबर उन्नति होती जायगी; क्योंकि जिस वक़्त आप एक पृथक् प्राण अथवा अपनी ही आदतों के ग़ुलाम न रह जायँगे, उस वक़्त आप प्रधान न्यायकर्ता (परमेश्वर) के तद्रूप बन जायँगे। फिर आप परमानंद की खान विश्वव्यापी जीवन के, जो परम सुख का भंडार है, प्रतिकूल न जाकर उसी के

अनुकूल काम करने लगेंगे। जो तंदुरुस्ती आप बना सकेंगे, वह आपके साथ रहेगी। आपकी सफलता का हिसाब कोई मानवी काया-माला नहीं कर सकेगा। उसका नाश नहीं हो सकेगा। जो कुछ प्रभाव तथा शक्ति आप प्राप्त कर सकेंगे, वह बराबर बढ़ती जायगी; क्योंकि वह तो उस अविनाशी आदि कारण का अंग हो जायगी, जो विश्व का सहारा है। इसलिये पवित्र हृदय तथा पूर्णतः व्यवस्थित मस्तिष्क ही स्वास्थ्य का रहस्य है—अविचल विश्वास और निर्धारित उद्देश ही सफलता की कुंजी है। मनोकामना के उद्दंड घोड़े को निश्चित इच्छा की लगाम से रोकना शक्ति का मूल है।

पद्य का अनुवाद

समस्त मार्ग मेरे पैरों की बाट जोह रहे हैं, चाहे मैं किसी प्रकाश-मय या अंधकारमय, मृतक या जीवित, चौड़े या संकीर्ण, उच्च तथा नीच, बुरे या भले किसी भी मार्ग में धीरे से या व्यग्रता के साथ प्रवेश कर उसको पार कर लूँ और फिर स्वयं अनुभव कर लूँ कि कौन अच्छा है और कौन बुरा। यदि मैं केवल निश्चित रूप से संकल्प करके हृदय-जन्य पवित्रता के संकीर्ण, उच्च तथा पवित्र मार्ग में प्रवेश कर वहीं स्थायी रूप से लग जाऊँ, तो सभी कल्याणकारी बातें मेरे चलते हुए पाँवों की प्रतीक्षा करने लग जायँ। फिर मैं कंटकमय मार्ग को पार कर हँसी उड़ानेवालों और घृणा करनेवालों से रक्षित रहकर फूलों की क्यारी में पहुँच जाऊँगा।

अगर मैं प्रति क्षण प्रेम तथा धैर्य में संलग्न रहूँ, पवित्रता के मार्ग पर चलूँ और कभी उच्चतम सत्यनिष्ठा से एक क़दम भी दूर न जाऊँ, तो मैं उसी स्थान पर खड़ा हो सकता हूँ, जहाँ पर स्वास्थ्य, सफलता और शक्ति मेरी बाट जोह रही हों। इस प्रकार मैं अंत में अमरत्व भी प्राप्त कर सकता हूँ।

मैं ढूँढ़कर प्रत्येक वस्तु प्राप्त कर सकता हूँ। मैं प्रत्यक्ष कार्य करके दिखा सकता हूँ। मुझको माँगने की आवश्यकता नहीं; बल्कि मैं उसको खोकर भी फिर वश में कर सकता हूँ। नियम मेरे लिये अपना सिर नीचा न करेगा; बल्कि यदि मैं अपनी विपत्ति का अंत करना चाहता हूँ और यदि अपनी आत्मा को सचमुच प्रकाशमय तथा जीवन-पूर्ण बनाना या फिर कभी न रोना मुझे अभीष्ट है, तो मुझको उस नियम के सामने झुकना पड़ेगा।

हमको थककर स्वार्थवश तमाम अच्छी बातों के लिये पुकार च मचानी चाहिए, बल्कि तलाश करके उनको प्राप्त करना हमारा उद्देश होना चाहिए। जानना तथा समझना हमारा ध्येय होना चाहिए। ज्ञान की ओर ही हमको अपने पवित्र पैरों को बढ़ाना चाहिए। हमको किसी वस्तु के लिये हुक्म देने तथा माँगने का अधिकार नहीं, बल्कि हरएक बात हमारे समझने के लिये है।

छठा अध्याय

परमानंद का रहस्य

संसार में सुख की जितनी महती कामना है, उतना ही सुख का अभाव भी है। अधिकांश निर्धन लोग धन के लिये इच्छुक रहते हैं। उनका विश्वास है कि धन पर अधिकार हो जाने से हमको अनंत तथा चिरस्थायी सुख प्राप्त हो जायगा। बहुत-से लोग जो धनाढ्य हैं, अपनी तमाम इच्छाओं और कामनाओं के पूर्ण हो जाने पर ग्लानि तथा धन से आच्छादित होने के कारण दुःखी रहते हैं और ग़रीबों से भी वे सुख से कहीं अधिक दूर होते हैं। अगर हम इन अवस्थाओं पर ग़ौर करें, तो अंत में हम इस सर्वोपरि, प्रधान और शुद्ध ज्ञान पर पहुँचेंगे कि केवल बाह्य जगत् के अधिकारों से न तो सुख प्राप्त हो सकता है और न उनके अभाव से दुःख ही हो सकता है, क्योंकि अगर ऐसी बात होती, तो ग़रीब सदैव दुःखी और अमीर सदैव सुखी मिलते। लेकिन प्रायः इसके विपरीत ही देखने में आता है। सबसे अधिक दुःखी मनुष्यों में से जिनको मैं जानता हूँ, कुछ तो ऐसे थे, जो धन और भोग-विलास की सामग्री से पूर्णतः परिवेष्टित थे। साथ-ही-साथ मुझे जो सबसे अधिक प्रसन्न-चित्त और सुखी मनुष्य मिले हैं, उनमें से कुछ के पास तो मुश्किल से जीवन की आवश्यक सामग्री थी। बहुत-से धन इकट्ठा करनेवाले लोगों ने स्वीकार किया है कि धनोपार्जन के उपरांत उनकी चाहों की स्वार्थमय पूर्ति ने उनको उनके जीवन की मधुरता से वंचित कर दिया, और जितने वे दरिद्रता की दशा में सुखी थे, उतने सुखी वे और कभी नहीं थे।

फिर सुख क्या है और वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? क्या सुख एक भ्रम है, एक मिथ्या कल्पित कथा है और केवल दुःख ही नित्य है ? एकाग्रचित्त होकर निरीक्षण करने और सोचने पर हमको पता चलेगा कि बुद्धि-मार्ग में प्रवेश करनेवाले लोगों के अतिरिक्त सभी का यह विश्वास है कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति में ही सुख प्राप्त होता है। अज्ञानता की भूमि में उत्पन्न और स्वार्थमय इच्छाओं से सींचा हुआ यह विश्वास ही संसार के समस्त दुःखों की जड़ है। इच्छाओं से मेरा मतलब केवल पाशविक इच्छाओं के संकीर्ण रूप से ही नहीं है, बल्कि उनमें भी कहीं शक्तिशाली, अति सूक्ष्म, मायान्वित उच्च आध्यात्मिक जगत् की समस्त इच्छाओं का भी उन्हीं में समावेश हो जाता है। और ये इच्छाएँ ऐसी हैं, जो बुद्धिमान् तथा उच्च कोटि के मार्जित लोगों को बंधन में डाले हुए हैं और उनको उस सौंदर्य, एकता तथा आत्मा की पवित्रता से वंचित रखती हैं, जिनका प्रकट होना ही सुख है।

अधिकांश मनुष्य यह बात मान लेंगे कि संसार में स्वार्थ ही समस्त दुःखों की जड़ है। लेकिन उनको यह भी आत्मविनाशक भ्रम हो जाता है कि दूसरों के ही स्वार्थ के कारण ऐसा होता है, न कि उनके स्वार्थ के कारण। ऐसा ख़याल अपने ही को नष्ट करता है। जिस वक़्त आप यह मानने के लिये लाचार हो जायँगे कि आपकी समस्त अप्रसन्नता आपके ही स्वार्थ का फल है, उस वक़्त आप स्वर्ग के द्वार से अधिक दूर न होंगे; परंतु जब तक आपका विश्वास यह रहेगा कि दूसरों का स्वार्थ ही आपको उन सुखों से वंचित कर रहा है, तब तक आप स्वयं अपने ही बनाए हुए बंधन में क़ैद और नज़रबंद रहेंगे।

कामनाओं से मुक्त अंतःकरण की पूर्ण मनोपावस्था, जिससे शांति तथा आनंद प्राप्त होता है, सुख कहलाती है। अपनी इच्छाओं को

पूर्ति से प्राप्त होनेवाला संतोष भ्रमात्मक और अल्प-कालीन होता है। उसके बाद अपनी ख़्वाहिशों को पूरा करने की इच्छा और भी बढ़ी होती है। जैसे सागर की तृप्ति करना असंभव है, वैसे ही इच्छाओं की भी तृप्ति असंभव है। जितना ही उसकी माँगें पूरी की जाती हैं, उतना ही वह और भी ज़ोरों से चिल्लाहट मचाती हैं। वह भ्रम में पड़े अपने भक्तों से सदैव बढ़ती हुई सेवा की आशा करती है और उसकी माँग उस समय तक बढ़ती जाती है, जब तक अंत में शारीरिक या मानसिक व्यथा उसको गिराकर दुःख की पवित्रकारी अग्नि में नहीं झोंक देती। इच्छा ही नरक है और उसी में सारी पीड़ाएँ केंद्रस्थ हैं। इच्छाओं को छोड़ना स्वर्ग प्राप्त करना है, जहाँ पर सब प्रकार के सुख यात्री की बाट देखा करते हैं।

"मैंने अपनी आत्मा को अदृश्य जगत् में छोकर भेजा था कि वह मेरे आगामी जीवन की कुछ हालतों को जान ले अर्थात् उनको समझ ले। परंतु धीरे-धीरे मेरी आत्मा मेरे पास लौटकर आई और कहने लगी कि मैं ही नरक और स्वर्ग दोनों हूँ।"

स्वर्ग-नरक अंत.करण की अवस्थाएँ हैं। स्वार्थ और आत्मा के प्रमोद में लिप्त होना ही नरक में डूबना है। आत्मपरता के परे उस चेतनावस्था को प्राप्त होना, जो नितांत आत्म-विस्मरणता और आत्म-त्याग की दशा है, स्वर्ग में प्रवेश करना है। स्वार्थ अंधा, विवेक-रिक्त तथा सत्य-ज्ञान से रहित होता है। उसका परिणाम सदैव दु.ख होता है। अभ्रांत धारणा, निष्पक्ष विवेचन और सत्य ज्ञान का होना केवल दैवी अवस्था में ही संभव है। जिस अंश तक आप इस दैवी चेतनावस्था का अनुभव कर पावेंगे, उसी अंश तक आप जान सकेंगे कि वास्तविक सुख क्या है। जब तक आप स्वार्थ-वश स्वयं अपना ही सुख नित्य ढूँढ़ते रहेंगे, सुख आपको बराबर धोखा देता रहेगा और आप अधमावस्था का बीज बोते रहेंगे।

जिस अंश तक आप पराए की सेवा में अपने को भुला देने में सफल होंगे, उसी अंश तक आपको सुख प्राप्त होगा और आप परमावस्था को प्राप्त हो सकेंगे।

"प्रेम करने में न कि प्रेम प्राप्त होने में हृदय को आनंद मिलता है। दानों को देने में हम वांछित अवस्था प्राप्त कर पाते हैं, दानों के चाहने में नहीं। जो कुछ आपकी आवश्यकता या इच्छा हो, उसी को आप बाँटिए। इसी प्रकार आपकी आत्मा पोषित होगी और इसी प्रकार आप अनन्त में जीवित रह सकेंगे।"

आत्म-परायण होना चिंता में डूबना है। स्वार्थ-त्याग करना शांति प्राप्त करना है। अपने ही स्वार्थ की पूर्ति चाहना केवल सुख से ही हाथ धोना नहीं है, बल्कि उससे भी जिसको हम सुख की जड़ मानते हैं। देखिए, एक पेटू किस तरह चारों ओर निहारा करता है कि कोई नई स्वाद की चीज़ मिल जाती, जिससे मैं अपनी मरी भूख को जगा लेता और किस प्रकार बोझ के मारे धँसता। तोंद निकाले वह बराबर रोगग्रस्त रहता है और अंत में मुश्किल से किसी भोजन को वह आनंद से खा पाता है। लेकिन जिसने अपनी भूख को जीत लिया है और जो स्वादिष्ठ भोजन-जन्य आनंद का इच्छुक ही नहीं रहता, बल्कि उसके विषय में सोचता तक नहीं, उसको बिलकुल ही साधारण भोजन में भी आनंद मिलता है। अपनी आँखों पर स्वार्थ का परदा पड़ा होने से मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति में परमानंद का स्वप्न देखता है। लेकिन उन इच्छाओं के पूरे होने पर जो सुख मिलता दिखाई देता है, परीक्षा करने पर वह दुःख की हड्डियों को छोड़कर शेष कुछ नहीं है। सचमुच जो जितना ही अपनी ज़िंदगी को चाहता है, वह उतना ही उससे हाथ धोता जाता है; और जो उसको खोता जाता है, वही असल जीवन प्राप्त करता है।

जिस वक्त आप अपने स्वार्थ को छोड़कर त्याग पर उद्यत हो जायँगे, उसी वक्त स्थायी सुख आपको प्राप्त होने लगेगा। जब बिना सोचे-विचारे और हिचकिचाए आप अपनी परम प्रिय, परंतु साथ-ही-साथ अपनी अस्थिर वस्तु को खोने के लिये प्रस्तुत हो जायँगे, तो आपको जो दुःखदायी क्षति मालूम होती है, वही बड़ा भारी लाभ हो जायगा; क्योंकि चाहे आप उस वस्तु को कितने ही ज़ोर से पकड़े रहें, वह एक दिन आपसे छीन ली जायगी। लाभ उठाने की अभिलाषा से त्याग करने से बढ़कर कोई अन्य भ्रम नहीं और न इससे बढ़कर अधिक दुःख की कोई दूसरी खान ही है। परंतु हठ को छोड़ देना और क्षति उठाने के लिये उद्यत होना वास्तव में जीवन बिताने का मार्ग है।

स्वभाव से ही अनित्य वस्तुओं में अपने को केंद्रस्थ करने से वास्तविक सुख को प्राप्त करना कैसे संभव है? अपने को स्थायी वस्तु में ही केंद्रस्थ कर शाश्वत तथा सच्चा सुख प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये अनित्य वस्तुओं में लिपटना और उनके लिये बिलखना छोड़कर आप अपने को उनसे परे ले जाइए। तब आप अनादि तथा अनंत का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। ज्यों-ज्यों आप अपनापन और स्वार्थ छोड़ते जायँगे और क्रमशः पवित्रता, स्वार्थत्याग और विश्वप्रेम के सिद्धांतों को अपनाते जायँगे, त्यों-त्यों आपको वह ज्ञान और सुख प्राप्त होता जायगा, जिसका प्रतिघात नहीं और जो आपसे कभी छीना नहीं जा सकता।

दूसरों के प्रेम में जिस हृदय ने अपने को भुला दिया है, उसको केवल सर्वोत्तम परमानंद का ही सुख प्राप्त नहीं है, बल्कि अब वह अमरत्व में प्रवेश कर गया; क्योंकि परमेश्वर का अनुभव अब उसे प्राप्त हो गया। अपने जीवन पर ज़रा फिर दृष्टि डालिए, तो आपको पता चल जायगा कि जिस-जिस समय आपने उदार बातों को कहा

था या दया और आत्म-त्यागमय प्रेम का कार्य किया था, उसी वक्त आपको परमानन्द मिला था।

आध्यात्मिक दृष्टि से सुख और ऐक्य समानार्थक या पर्यायवाची शब्द हैं। जिसको अध्यात्म में प्रेम कहते हैं, उसी प्रधान नियम की एक अवस्था समवर्तना है। स्वार्थ से ही अनमेल होता है और स्वार्थी होना ईश्वरीय अवस्था से पृथक् होना है। जिस वक्त हम सर्वव्यापी प्रेम का अनुभव करते हैं, उस वक्त हम भी दैवी तान या विश्वगान में एक हो जाते हैं। खुदी का नाश होने पर जो सबको अपने में मिलानेवाला प्रेम उत्पन्न होता है, उसका अनुभव होते ही हम उस दैवी तान या विश्वगान में एक-स्वर हो जाते हैं। तदुपरांत हमको वह अमिट राग मिल जाता है, जो सच्चा सुख है।

नर-नारी अंधे बनकर इधर-उधर सुख की खोज में मारे-मारे फिर रहे हैं। उनको सुख नहीं मिल सकता और न तो उस वक्त तक उनको कभी सुख मिलेगा, जब तक वे इस बात को नहीं मान लेते कि सुख उनके अंदर ही है, उनके चारों ओर विश्व में भरा पड़ा है और अपने स्वार्थमय अन्वेषण से वे अपने को सुख से अलग हटाते जा रहे हैं।

"गगन चुंबी सनोबर का वृक्ष और झूमती हुई पत्तियों से लदे वृक्षों और लताओं में होकर मैंने सुख का पीछा किया कि मैं उसको अपनी पूँजी बना लूँ। वह भागता गया और तिरछी पहाड़ियों तथा कंदरों, खेतों तथा चरागाहों और सुनहली झाड़ियों में होकर मैंने उसका पीछा किया। टक्कर मारती हुई नदियों में होकर मैं उन ऊँची चट्टानों पर चढ़ गया, जहाँ पर गिद्ध और उल्लू बोलते हैं, और मैं शीघ्रता के साथ प्रत्येक समुद्र और स्थल को पार करता गया। परंतु सुख ने सदैव धोखा दिया।

"थककर शक्ति न आने पर मैंने पीछा करना छोड़ दिया और

समुद्र के एक निर्जन तट पर विश्राम करने के लिये सो गया। एक ने आकर भोजन माँगा और दूसरे ने भिक्षा चाही। मैंने अपनी रोटी और धन उनके पसारे हुए हाथों में छोड़ दिया। एक ने आकर सहानुभूति चाही, दूसरे ने विश्राम की लालसा की। मैं हरएक के साथ अपनी शक्ति-भर हाथ बँटाता गया। लीजिए, अब तो वह आनंद-दायी सुख ईश्वरीय रूप धारण कर मेरे पास आया और कहने लगा कि मैं तुम्हारा हूँ!"

बर्ले (Burleigh) के ये सुंदर वचन सीमातीत सुख का गुप्त रहस्य खोल देते हैं। अपने स्वार्थ और वस्तुओं का हनन कीजिए। फिर तुरंत आप उनसे परे होकर उस अव्यक्त तथा अनित्य में लीन हो जायँगे। उस तुच्छ तथा संकीर्ण स्वार्थपरता को छोड़ दीजिए, जो तमाम वस्तुओं को अपने ही स्वार्थ का साधन बनाना चाहती है। फिर तो आप परियों की मोहब्बत के अधिकारी बन जायँगे और विश्व-प्रेम के तत्त्व तथा सार को जान जायँगे। दूसरों के दुःख दूर और सेवा करने में अपने को भुला दीजिए। फिर दैवी सुख आपको तमाम चिंताओं तथा दुःखों से मुक्त कर देगा। अच्छे विचारों के साथ पहला, अच्छी बातों के भाषण के साथ दूसरा और सत्कार्यों के साथ तीसरा क़दम उठाकर मैंने स्वर्ग में पाँव रक्खा था। इसी मार्ग पर चलकर आप भी स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं। यह आप से परे या दूर नहीं, बल्कि यह यहीं है। केवल स्वार्थ-रहित लोग ही इसका अनुभव कर सकते हैं। केवल पवित्र हृदयवाले ही इसको पूर्ण रूप से जानते हैं।

अगर आपने इस अपरिमित सुख का अनुभव नहीं किया है, तो निःस्वार्थ प्रेम के उच्च आदर्श को सदैव अपने सामने रखकर और इसकी ओर अग्रसर होकर आप इसको कार्य-रूप में अनुभव करना आरंभ कर सकते हैं। ऐसा करना आत्मा को उस पवित्र उद्गम-स्थान

की ओर फेरना है, जहाँ पर ही स्थायी सुख प्राप्त किया जा सकता है। उच्चाकांक्षा से ही लिप्सा की विनाशकारी शक्तियाँ दिव्य तथा सबकी रक्षा करनेवाली शक्ति में परिणत की जा सकती हैं। उच्च अभिलाषा करना तृष्णा को ढकनेवाली खाल को दूर करने का उद्योग करना है। इस प्रकार उद्योग करना एकांत निवास तथा दुःख के मुकाबले से बुद्धिमान् बनकर किसी अपव्ययी का अपने पिता के महल को वापस जाना है।

ज्यों-ज्यों आप इस गंदे स्वार्थ से परे होते जायँगे और बंधन की एक के बाद दूसरी ज़ंजीर को तोड़ते जायँगे, त्यों-त्यों दान देने की प्रसन्नता का अनुभव आपको होता जायगा और आपको पता चल जायगा कि वह भिक्षा लेने के दुःख से कितना भिन्न है। भिक्षा स्वीकार करना तो अपने वास्तविक तत्त्व तथा बुद्धि, अपने अंदर की बढ़ती रोशनी और प्रेम को छोड़ना है। उस वक़्त आप समझ जायँगे कि लेने से देना कहीं अधिक सुखदायी है। परंतु देना हृदय से होना चाहिए और वह स्वार्थ और पुरस्कार की इच्छा से मुक्त होना चाहिए। पवित्र प्रेम के दान से हमेशा परमानंद मिलता है। अगर दान देने के बाद आपको दुःख होता है कि लोगों ने आपको धन्यवाद नहीं दिया, न आपकी खुशामद की और न आपका नाम ही अख़बारों में निकाला, तो आपको जान लेना चाहिए कि आपकी दान की इच्छा आपके अंदर के प्रेम के कारण नहीं, बल्कि मिथ्याभिमान के कारण हुई थी। आप केवल बदला पाने के लिये दान दे रहे थे। वास्तव में वह देना नहीं था, लेना था।

दूसरों की भलाई में अपने को नष्ट कर दीजिए। जो कुछ आप करते हैं, उसी में अपने को भुलवा दीजिए। यही अपरिमित सुख की कुंजी है। स्वार्थपरता से बचने का सदैव ख़याल रखिए। जो कुछ आप करते हैं, उसी में अपने को भुला दीजिए। यही अपरिमित सुख

की कुंजी है। विश्वास के साथ अंतःकरण से त्याग करने का दिव्य पाठ सीखिए। इस प्रकार आप सुख के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जायँगे तथा अमरत्व की चमकीली चादर ओढ़कर संपूर्ण सुख के सर्वदा घन-रहित प्रकाश में अपना जीवन बिता सकेंगे।

पद्य का अनुवाद

क्या आप उस नित्य सुख की तलाश में हैं, जिसका कभी नाश नहीं होता ?

क्या आप उस प्रसन्नता को ढूँढ रहे हैं, जो स्थायी है और जिसके बाद दुःख के दिन शेष नहीं रह जाते ?

क्या आप प्रेम, जीवन और शांति के स्रोतों के लिये विछिन्न हो रहे हैं ?

अगर ऐसा है, तो आप तमाम बुरी तृष्णाओं और स्वार्थमय चाह को छोड़ दीजिए।

क्या आप दुःख के रास्ते में ठोकर खा रहे हैं, शोक आपको सता रहा है और घाव दुःख दे रहा है ?

क्या आप ऐसे मार्ग पर चल रहे हैं, जो आपके थके पैरों को और भी घायल कर रहा है ?

क्या आप उस विश्राम-स्थान के लिये आहें भर रहे हैं, जहाँ पर विषाद और रोना बंद हो जाता है ?

यदि ऐसा है, तो आपको अपने स्वार्थमय हृदय का दमन और शांतमूर्ति हृदय को प्राप्त करना चाहिए।

सातवाँ अध्याय

समृद्धि-प्राप्ति

जिस हृदय में ईमानदारी, विश्वास, दया और सच्ची समृद्धि की प्राप्तीच्छा प्रचुर परिमाण में वर्तमान होती है, उसी को समृद्धि का अनुभव करने का अधिकार है। जिस हृदय में ये गुण नहीं, वह समृद्धि को जान ही नहीं सकता; क्योंकि सुख की भाँति समृद्धि भी कोई बाह्य संपत्ति नहीं; बल्कि वह भी अंतःकरण का एक अनुभव है। लालची मनुष्य लखपती भी हो जाय, परंतु तब भी वह सदैव दुःखी, नीच और भिखारी बना रहेगा, जब तक संसार में कोई उससे अधिक धनवाला होगा। इसके विपरीत ईमानदार, उदार तथा प्रेमी संपूर्ण अमोघ समृद्धि को प्राप्त करेगा, चाहे उसकी बाह्य सपत्ति बहुत थोड़ी क्यों न हो। भिखारी वही है, जो असंतुष्ट है, और अपने पास की संपत्ति से संतुष्ट रहनेवाला ही धनाढ्य है। इसके अतिरिक्त यदि कोई करुणा के कारण अपनी संपत्ति को व्यय करनेवाला है, तो वह उस संतोषी से भी अधिक धनी है।

जिस वक़्त हम यह सोचते हैं कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनो तरह की अच्छी वस्तुएँ विश्व में भरी पड़ी हैं और जब हम इसका मुक़ाबला मनुष्य की अंधे होकर चंद मुहरों या कुछ एक एकड़ ज़मीन की माँग से करते हैं, तो हमको पता चलता है कि स्वार्थ कितना अंधा और अज्ञानमय है। यही समय है, जब हमको अनुभव होता है कि स्वार्थ की पूर्ति की अभिलाषा आत्म-हनन है।

प्रकृति बिना कोर-कसर के ही सब कुछ उठाकर दे देती है;

परन्तु तब भी उसकी कुछ हानि नहीं होती । मनुष्य सबको अपनाने में ही सब कुछ खो बैठता है ।

अगर आप सच्ची समृद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको कभी यह विश्वास करके नहीं बैठ जाना चाहिए कि अगर आप ठीक-ठीक काम करेंगे, तो हरएक वस्तु आपके प्रतिकूल जायगी ।

सत्य की प्रधानता में आपका जो विश्वास है, उसको प्रतिद्वंद्विता के शब्द से नष्ट न होने दीजिए । स्पर्द्धा के नियम के विषय में लोगों का क्या ख़याल है, मैं इसकी ज़रा भी परवा नहीं करता । क्या मैं उस अपरिवर्तनशील नियम को नहीं जानता, जो एक दिन सबको नीचा दिखावेगा, और सत्यपरायण मनुष्यों के हृदय में अब भी यह सबको नीचा बनाए हुए है ? इस नियम को जानकर मैं बेईमानी के हरएक काम को अविचल शांति के साथ देख सकता हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि कहाँ पर निश्चित विनाश इसका फल होगा ।

समस्त दशाओं में वही कीजिए, जिसकी सत्यता पर आपको विश्वास हो । नियम में विश्वास रखिए । उस ईश्वरीय शक्ति में विश्वास रखिए, जो विश्व में प्राकृतिक रूप से है । यह कभी आपको न छोड़ेगी और आप सदैव सुरक्षित रहेंगे । इस विश्वास की सहायता से आपकी प्रत्येक हानि लाभ में बदल जायगी, तमाम विपत्तियाँ, जो धमकी दे रही हैं, आशीर्वाद का रूप धारण कर लेंगी । ईमानदारी, उदारता और प्रेम को कभी दूर न होने दीजिए; क्योंकि शक्ति का संयोग होने पर ये ही आपको असल समृद्धिशाली दशा में पहुँचा सकते हैं । जिस समय संसार आपसे कहता है कि अपने आप पर पहले ध्यान दीजिए, बाद को दूसरों पर, उस समय आप संसार का विश्वास न कीजिए । ऐसा करना दूसरों का बिलकुल ही ध्यान न कर केवल एक ही आदमी के

(स्वयं अपने ही) आराम का ख़याल करना है। जो लोग ऐसा करने के आदी हैं, एक दिन ऐसा होगा कि उनको सभी त्याग देंगे; और फिर जब दुःख तथा एकांत में पड़ने पर वे रोदन मचावेंगे, तो उनकी सुननेवाला और सहायता करनेवाला कोई न मिलेगा। दूसरों के पहले केवल अपना ही ध्यान रखना, अपनी प्रत्येक दिव्य तथा उच्च भावना को संकीर्ण करना, परदे से ढकना और रोकना है। अपनी आत्मा को बृहत् बनाइए और प्रेम तथा उदारता के साथ दूसरों से अपना दिल मिलाइए। इसका फल यह होगा कि आपकी प्रसन्नता स्थायी होगी; और सब ऋद्धि-सिद्धि आपको प्राप्त हो जायँगी।

जो लोग सत्यता के मार्ग से च्युत हो गए हैं, उनको स्पर्द्धा से बराबर बचने का यत्न करना पड़ता है। जो लोग सदैव उचित पथ के अनुयायी हैं, उनको ऐसी संरक्षकता की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह कोई निःसार कथन नहीं है। आजकल भी ऐसे मनुष्य हैं, जो अपने विश्वास और ईमानदारी से तमाम स्पर्द्धा को नीचा दिखलाते हैं और जो प्रतिद्वंद्विता के समय में अपना मार्ग बिना ज़रा-सा भी छोड़े बराबर समृद्धिशाली बनते गए हैं। इसके विपरीत जो उनको ऊँचा साबित करना चाहते थे, उनको पराजित होकर पीछे हटना पड़ा है।

उन समस्त गुणों को प्राप्त करना, जिनसे मनुष्य श्रेष्ठ बन सकता है, तमाम बुरी शक्तियों से अपनी रक्षा करना है। इससे परीक्षा के समय में दूनी रक्षा होती है। अपने को इन्हीं गुणों की मूर्ति बना लेना ऐसी सफलता प्राप्त करना है, जो कभी डिग नहीं सकती—ऐसी समृद्धिशाली दशा में प्रवेश करना है, जो बराबर सदैव के लिये क़ायम रहेगी।

पद्य का अनुवाद

अदृश्य हृदय की श्वेत चादर पर पाप तथा चिंता, विषाद तथा पीड़ा का दाग़ पड़ गया है। परचात्ताप की तमाम नदियाँ और विनती के चश्मे इसको धोकर फिर श्वेत नहीं बना सकते।

जब तक अज्ञानता के मार्ग पर हम चल रहे हैं, त्रुटियों के दाग़ का लगना बंद नहीं होगा। स्वार्थ के टेढ़े रास्ते की निशानी अपवित्रता है, जिसमें बहुत हृदय-वेदना होती है और निरुत्साह के डंक ऊपर से पड़ते हैं।

मेरे वस्त्र को श्वेत बनाने में केवल ज्ञान और बुद्धि ही साथ देगी; क्योंकि प्रेम का समुद्र इन्हीं में रहता है। यहीं पर अविचल, नित्य तथा सौम्य-शांति निवास-स्थल बनाती है।

पाप और परचात्ताप दुःख के मार्ग हैं। ज्ञान और बुद्धि शांति के मार्ग का निर्माण करते हैं। अभ्यास का जो निकट मार्ग है, उससे पता चल जायगा कि परमानंद का कहाँ से आरंभ होता है और पीड़ा तथा विषाद का बंद होना कैसे शुरू होता है।

जिस समय अपनापन छूट जायगा और सत्यता उसका स्थान ले लेगी, उसी समय अपरिवर्तनशील और अदृश्य परमात्मा हमारे भीतर अपना मकान बनावेगा और अदृश्य हृदय के श्वेत आवरण को साफ़ कर देगा।

दूसरा भाग

शांति-प्राप्ति का मार्ग

पहला अध्याय

ध्यान-जन्य शक्ति

आध्यात्मिक ध्यान ईश्वर (सत्य) को प्राप्त करने का मार्ग है। पृथ्वी से स्वर्ग, त्रुटि से सत्य को पहुँचानेवाली भावना की ही सीढ़ी होती है। प्रत्येक साधु इस पर चढ़ा है और ऊपर पहुँचा है। हरएक पापी को देर-सवेर इसके पास आना पड़ेगा। हरएक थके पथिक को, जिसने दुनिया और ख्वाहिशों से मुँह मोड़ लिया है और परमात्मा के निवास की ओर बढ़ने की ठान ली है, इसके सुनहले डंडों पर पाँव रखकर जाना पड़ेगा। उसकी सहायता के बिना दिव्यावस्था, ईश्वरीय सादृश्य तथा सुखदायी शांति में आपका प्रवेश नहीं हो सकता और सत्य का चमत्कारी आनंद तथा अक्षय प्रताप आपसे छिपा रहेगा।

किसी विषय या विचार पर, उसको पूर्णतः समझने की इच्छा से, प्रगाढ़ रूप से मनन करना ध्यान करना कहलाता है। जिस किसी बात का आप ध्यान करेंगे, आप केवल उसको समझेंगे ही नहीं, बल्कि स्वयं आप उसका अधिकाधिक सादृश्य प्राप्त करते जायँगे; क्योंकि इस तरह से वह आपके जीवन में समाविष्ट हो जायगा और वास्तव में वह आपकी ही आत्मा बन जायगा। इस-लिये अगर आप किसी भ्रष्ट या स्वार्थमय बात का लगातार चिंतन करते रहेंगे, तो आप स्वयं अंत में तुच्छ और स्वार्थ की मूर्ति बन जायँगे। अगर आप निरंतर ऐसी बात का ध्यान करेंगे, जो पवित्र और स्वार्थ-रहित है, तो आप निश्चय पवित्र और निस्स्वार्थ बन जाएँगे।

मुझको बतला दीजिए कि आप सबसे अधिक प्राय. किस बात को सोचा करते हैं और शांति के समय आपकी आत्मा स्वभावतः किस ओर झुकती है, तो मैं आपको बतला दूँगा कि आप दुःख या शांति की किस अवस्था की ओर जा रहे हैं। इसके साथ-ही-साथ मैं यह भी बतला दूँगा कि आप दिव्य मूर्ति बन रहे हैं या पशु-रूप धारण कर रहे हैं।

जिस बात को मनुष्य सबसे अधिक सोचा करता है, उसी के बिलकुल तद्रूप बन जाने की ओर उसका अनिवार्य झुकाव होता है। इसलिये आप जिस बात को सोचा करते हों, वह आपसे ऊँचे दर्जे की हो, नीचे दर्जे की नहीं, ताकि जब कभी आप उस पर विचार करें, तो आपका अभ्युत्थान हो। अपने ध्यान के विषय को पवित्र तथा स्वार्थ के अंश से अमिश्रित रखिए। इस तरह से आपका हृदय पवित्र हो जायगा और सत्य के निकट खिंचता जायगा, न कि वह भ्रष्ट होता और नैराश्य तथा त्रुटि की ओर खिंचता जायगा।

अध्यात्म के विचार से—जिस अर्थ में मैं उसका प्रयोग कर रहा हूँ—आध्यात्मिक जीवन तथा ज्ञान की कुंजी ध्यान ही है। ध्यान ही की शक्ति की बदौलत हरएक भविष्यवादी साधु और उद्धारक भविष्यवादी साधु और उद्धारक बना है। बुद्ध भगवान् तब तक सत्य पर विचार करते रहे, जब तक उनमें यह कहने की शक्ति न आ गई कि मैं ही सत्य हूँ। मसीह दिव्य प्रकृति पर उस समय तक विचार करते रहे, जब तक वह न कह सके कि मैं और मेरा पिता एक ही हैं।

ईश्वरोपासना या वंदना का सार और भावार्थ यही है कि पवित्र दैवी सत्य पर अपने ध्यान को केंद्रस्थ किया जाय। ध्यान करना ही आत्मा का शांत मार्ग से नित्य तक पहुँचना है। जिस प्रार्थना में ध्यान नहीं बल्कि केवल माँग-ही-माँग है, वह बिना आत्मा का शरीर है और उसमें यह ताक़त नहीं कि वह दिल या दिमाग़ को पाप और

शोक से परे चले जा सकें। अगर आप प्रतिदिन बुद्धि, शांति, उच्चतर कोटि की पवित्रता, सत्य के पूर्ण अनुभव के लिये प्रार्थना करते हैं और जिनके लिये आप प्रार्थना करते हैं, वे आपसे अब भी दूर हैं, तो इसका अर्थ यही है कि आप एक वस्तु के लिये तो प्रार्थना करते हैं और आपके विचार तथा कार्य में कोई दूसरी वस्तु समाई हुई है। अगर आप ऐसे दुराग्रहों को बंद कर दें और अपने मस्तिष्क को उन वस्तुओं से हटा लें, जिनमें स्वार्थ-वश चिपके रहने से आप वांछित पवित्र सत्य से वंचित रहते हैं, अगर आप अब से परमात्मा से ऐसी बात की प्रार्थना न करें, जिसके आप अधिकारी नहीं या उससे उस प्रेम और दया के लिये मिन्नत करना छोड़ दें, जिसको आप स्वयं दूसरों को देने से इनकार करते हैं, बल्कि सत्य के ही भाव पर सोचना तथा चलना आरंभ कर दें, तो दिन-प्रति-दिन आप इन सच्ची बातों को अपनाते जायँगे और अंत में एक दिन आप इन्हीं के साथ एक रूप बन जायँगे।

यदि कोई किसी सांसारिक स्वार्थ की पूर्ति चाहता है, तो उसको उसके लिये जी-जान से काम करने को राज़ी रहना चाहिए। यदि कोई यह समझता हो कि सिर्फ़ हाथ जोड़कर माँगने या गिड़गिड़ाने से ही मुझको मेरी वस्तु मिल जायगी, तो वह वास्तव में मूर्ख है। इसलिये व्यर्थ को ऐसा न सोचिए कि बिना यत्न किए और हाथ-पाँव हिलाए ही आप स्वर्गीय अधिकारों को प्राप्त कर लेंगे। केवल जिस वक़्त आप सत्य के साम्राज्य में सच्चे तौर पर जी तोड़कर काम करना शुरू कर देंगे, उसी वक़्त आप जीवन को क़ायम रखनेवाली रोटी के भागी होंगे; और जब बिना हाय-हाय किए सब्र के साथ परिश्रम कर आप अपने दिल की आध्यात्मिक कमाई को प्राप्त कर लेंगे, तो आप उससे वंचित भी न रहेंगे।

यदि वास्तव में आपको सत्य की प्राप्ति अभीष्ट है और केवल

अपनी तृष्णाओं की पूर्ति नहीं, अगर आप इसको संपूर्ण सांसारिक सुखों और लाभों से अधिक प्यार करते हैं, यहाँ तक कि परमानंद भी इसके सामने आपको तुच्छ मालूम होता है, तो इसमें संदेह नहीं कि आप इसकी प्राप्ति के लिये आवश्यक यत्न करने को तत्पर रहेंगे।

यदि आप पाप तथा विषाद से मुक्त होना चाहते हैं, यदि नितांत पवित्रता का स्वाद लेना ही आपको अभीष्ट है और इसी के लिये आप दीर्घ साँस लेते तथा स्तुति करते हैं, अगर बुद्धि तथा ज्ञान को प्राप्त करना आपका लक्ष्य है, अगर नितांत सुखदायी स्थायी शांति का अधिकारी बनना आपका उद्देश्य है, तो आइए और ध्यान-मार्ग की शरण लीजिए। साथ-ही-साथ ध्यान का प्रधान उद्देश सत्य बनाइए।

आरंभ में ही ध्यान और निरर्थक चिंता करके अंतर समझ लेना चाहिए। इसमें कोई असार या अव्यावहारिक वस्तु नहीं। यह तो केवल ढूँढ़ने और स्थिर विचार का मार्ग है, जिससे सरल, शुद्ध सत्य को छोड़कर कोई वस्तु शेष नहीं रहेगी। इस प्रकार ध्यान लगाने के अभ्यास से आपके जीवन-भवन का निर्माण प्राग्धारणाओं पर न होगा, बल्कि अपने स्वार्थ का विस्मरण हो जाने पर आपको केवल इतना ही ध्यान रहेगा कि आप सत्य की तलाश में हैं। इस तरह से एक-एक करके आप अपनी पुरानी भूलों को दूर करते जायँगे और संतोष के साथ सत्य विकास की प्रतीक्षा करते रहेंगे। यह सत्य विकास उसी वक्त होगा, जब कि आपकी त्रुटियाँ पर्याप्त अंश में दूर हो जायँगी। अपने हृदय को शांत रूप से नम्र बनाकर आप इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि हमारे अंतःकरण के ही अंदर एक केंद्र है, जहाँ पर पूर्ण सत्य का निवासस्थान है। इसके चारो तरफ़ मांस की दीवार-पर-दीवार बनी हुई है और ये दीवारें उस केंद्र को घेरे हुए

है। पूर्ण दिव्य ज्ञान ही शक्ति है। विषय वासना का विनाशकारी तथा अर्थ का अनर्थ करनेवाला जाल ही इस पूर्ण स्वच्छ धारणा को जो सत्य है, अंधकार में रखता है। इसी माया-जाल के कारण सारे भ्रम पैदा होते हैं। सच्चा ज्ञान बंद प्रकाश के निकालने के लिये रास्ता बनाने में है, न कि उस प्रकाश को अंदर लाने में है जो बाहर समझा जाता है। दिन के किसी भाग को ध्यान के लिये चुन लीजिए और वह समय उस पवित्र कार्य के लिये रख छोड़िए। सबसे अच्छा समय प्रभात होगा; क्योंकि उस वक्त हरएक वस्तु पर शांत भाव विद्यमान रहता है। उस समय समस्त प्राकृतिक अवस्थाएँ आपके अनुकूल होंगी। रात-भर खूब तरसने के कारण विषयासक्ति मुर्दा पड़ गई होगी। पूर्व दिन के उत्तेजना-पूर्ण भाव और चिंताएँ दूर हो गई होंगी और मस्तिष्क शांत तथा ताज़ा होने के कारण आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करने के योग्य होगा। इसमें शक नहीं कि प्रारंभिक उद्योगों में से, जो आपको करने पड़ेंगे, एक तो यह होगा कि भोग-विलास और आलस्य को भगाना पड़ेगा। अगर आप ऐसा करने से इनकार करेंगे, तो आप आगे नहीं बढ़ सकते; क्योंकि आत्मा की आज्ञाएँ अलभ्य होती हैं।

आध्यात्मिक जागृति का होना मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों की जागृति का होना है। आलसी तथा विषयासक्त कभी सत्य का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। जो मनुष्य शांतिमय प्रभाव के अमूल्य समय को स्वास्थ्य तथा शक्ति के होते हुए ऊँघाई लेने में खो देता है, वह स्वर्गीय सुख की प्राप्ति के लिये नितांत अयोग्य है।

वह मनुष्य जिसकी बुद्धि जाग्रत् होने लग गई है, जिसको उच्च संभावनाओं का ज्ञान होने लग गया है, और जिसने जगत् को परिवेष्टित करनेवाले अंधकार को भगाना आरंभ कर दिया है, सितारों के डूबने के पूर्व ही उठ जाता है और पवित्र भावनाओं के सहारे

अंतःकरण के अंधकार को भगाते हुए सत्य प्रकाश को प्राप्त करने के लिये यत्न करना उसका प्रथम कर्तव्य होता है। इसके विपरीत इस प्रभात समय में सोनेवाले मनुष्य स्वप्नावस्था में मग्न रहते हैं।

जिन बड़े अधिकारों तथा उच्च स्थानों को महान् पुरुषों ने प्राप्त कर उनका उपभोग किया था, वे केवल छलाँग मारकर एकाएक नहीं पहुँचे थे, बल्कि वे लोग रात्रि में जिस वक्त उनके साथी सोते थे, बराबर जागकर पूर्ण उन्नति के लिये परिश्रम किया करते थे।

आज तक कोई ऐसा पवित्रात्मा साधु या सत्य-प्रचारक नहीं हुआ है, जो प्रातःकाल उठता न रहा हो। ईसामसीह को सवेरे उठने का अभ्यास था और वह प्रभात में ही ऊँचे एकांत के पहाड़ों पर चढ़कर पवित्र भावनाओं पर ध्यान लगाते थे। बुद्ध भगवान् प्रभात से एक घंटे पूर्व ही उठ जाया करते और ध्यानस्थ हो जाते थे। उनके तमाम शिष्यों को भी ऐसा ही करने की आज्ञा थी।

यदि सुबह उठते ही आपको अपना प्रतिदिन का काम आरंभ कर देना पड़ता है और इस प्रकार आप प्रभात समय को नियमित ध्यान में लगाने से वंचित रहते हैं, तो आप रात्रि में एक घंटा इस काम के लिये देने का यत्न कीजिए, और यदि रोज़ाना कामों के श्रम तथा आधिक्य के कारण आपको यह समय भी नहीं मिलता, तो आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि काम के बीच-बीच में जब आपको अवकाश मिलता हो, तब आप उस अवकाश को पवित्र ध्यान में लगाकर अपने विचारों को ऊपर की ओर ले जाने का यत्न कर सकते हैं। या आप उन चंद मिनटों को इस काम में लगा सकते हैं, जिनको आप बिना उद्देश्य के व्यर्थ खोया करते हैं। अगर आपका काम ऐसा है, जो अभ्यास के कारण स्वाभाविक रीति पर होता रहता है, तो काम करते समय भी आप ध्यान कर सकते हैं। देर तक मोची का काम करते-करते जैकब बोहेमी ने, जो

ईसाई मत का एक विख्यात साधु और तत्ववेत्ता था, एक वृहत् ज्ञान प्राप्त किया था। जीवन में सोचने का वक्त मिलता है, सर्वोपरि कर्म-निष्ठ और धर्म को भी उच्चाभिलाषी तथा ध्यान से कोई रोक नहीं सकता। आध्यात्मिक ध्यान तथा आत्मसंयम अभिन्न हैं। अपने को समझने का यत्न करने के लिये आरंभ में ही आत्म-परीक्षार्थ आपको अपने ही ऊपर ध्यान लगाना आरंभ कर देना होगा; क्योंकि याद रखिए, जो वृहत् उद्देश्य आपके सम्मुख होगा, वह अपनी समस्त त्रुटियों को दूर करना होगा, ताकि आप सत्य का अनुभव कर सकें। आप अपने उद्देश्यों, विचारों और कर्तव्यों पर प्रश्न करने लगेंगे—जब आप अपने आदर्श से उनका मुक़ाबला करेंगे—क्योंकि आप उन पर निष्पक्ष तथा शांत दृष्टि से विचार करेंगे। इस तरह से आप उस मानसिक तथा आध्यात्मिक तुली हुई अवस्था को बराबर पहुँचते जायँगे, जिसके बिना जीवन-सागर में मनुष्य अशक्त तिनके की तरह तैरा करता है। अगर आपमें घृणा तथा क्रोध करने की आदत है, तो आप सौम्य भाव और क्षमा का ध्यान कीजिए, ताकि आप अपनी बेवक़ूफ़ी और क्रूरता की चाल को अच्छी तरह से पहचान और जान लें। उस वक़्त आप प्रेम, शिष्टाचार और अपरिमित क्षमता के विचारों में संलग्न हो जायँगे। फिर जब आप किसी तुच्छ बात की जगह पर उससे बड़ी को स्थान देंगे, तो क्रमशः अदृश्य रूप से आपके अंदर प्रेम के पवित्र नियम का ज्ञान प्रवेश करेगा; और आप यह समझने लगेंगे कि जीवन की पेचीदा कारवाइयों पर इस प्रेम का कैसा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक विचार, वाक्य और कर्तव्य में इस ज्ञान की सहायता लेने से आप क्रमशः और भी सभ्य, प्रेम-मूर्ति तथा पवित्र बनते जायँगे। प्रत्येक भूल, प्रत्येक स्वार्थमय इच्छा और प्रत्येक मानव-निर्बलता के साथ ऐसा ही कीजिए। ध्यान-शक्ति से ही इस पर विजय प्राप्त होती है। ज्यों-ज्यों हम प्रत्येक पापमय

विचार और त्रुटि को निकालते जाते हैं, त्यों-त्यों अधिकाधिक सत्य का प्रकाश यात्री आत्मा को प्रकाशमय बनाता जाता है।

इस तरह से ध्यान करने का फल यह होगा कि आप अपने एकमात्र शत्रु स्वार्थ-पूर्ण तथा विनश्वर आत्मा से अपने को निरंतर रक्षित करके शक्तिशाली होते जायँगे और आप उस अविनाशी तथा पवित्र आत्मा को दृढ़ रूप से पकड़ते जायँगे, जिसको सत्य से कोई पृथक् नहीं कर सकता। आपके चिंतन का सद्यः फल एक शांत आध्यात्मिक शक्ति होगी, जो जीवन-संग्राम में आपका सहारा और विश्राम-स्थान होगी। पवित्र विचारों की विजयकारी शक्ति बड़ी भारी होती है; और जो शक्ति तथा ज्ञान हमको शांतिमय ध्यान में प्राप्त होता है, वही चिंता, प्रलोभन और झंझटों के आक्रमण के समय हमको वास्तविक वस्तु का स्मरण कराकर हमारी रक्षा करता है।

ज्यों-ज्यों ध्यान से आपमें बुद्धि का विकास होगा, त्यों-त्यों आप अधिकाधिक अपनी उन स्वार्थमय इच्छाओं को छोड़ते जायँगे, जो क्षणिक और परिवर्तनशील तथा विषाद और चिंता को उत्पन्न करनेवाली हैं। साथ-ही-साथ अधिक विश्वास तथा चरित्र-दृढ़ता आने पर आप निर्विकार सिद्धांतों की शरण लेंगे और स्वर्गीय शांति का अनुभव करेंगे।

अटल सिद्धांतों के ज्ञान की प्राप्ति ही ध्यान का फल है; और आपकी ध्यान-जन्य-शक्ति उन सिद्धांतों पर भरोसा तथा विश्वास रखने में सहायक होती है। इस प्रकार आप अविनाशी सत्ता में लीन हो जाते हैं। इसलिये ध्यान का अंतिम फल ईश्वर तथा सत्य का ज्ञान और ईश्वरीय पूर्ण शांति की प्राप्ति होती है।

आप अपने ध्यान को उस आचार-विचार के स्थान से आरंभ कीजिए जहाँ पर आप इस वक्त हैं। स्मरण रखिए कि लगातार

अटूट सहनशीलता के द्वारा ही आप सत्य तक पहुँचकर सत्य-स्वरूप बन सकेंगे। यदि आप कट्टर ईसाई-मतावलंबी हैं, तो बिना नागा ईसा की परम पवित्रता और आचरण की दिव्य मूर्ति का आपको ध्यान करना चाहिए। उनकी प्रत्येक आज्ञा को अपने बाह्य तथा भीतरी जीवन में बर्तना चाहिए, ताकि आप क्रमशः उन्हीं का सादृश्य प्राप्त करते जायँ, आपको उन धर्मध्वजी पुरुषों की तरह न बन जाना चाहिए, जो सत्य नियम का न तो ध्यान करते हैं और न अपने मालिक की आज्ञाओं पर ही चलते हैं, बल्कि केवल दिखावे के लिये पूजन करके ही संतुष्ट हो जाते हैं। वे अपने सांप्रदायिक धर्म में ही संतुष्ट रहना सब कुछ समझते हैं, जिसका फल यह होता है कि वे पाप तथा दुःख के घेरे में निरंतर चक्कर लगाया करते हैं। ध्यान-जन्य-शक्ति द्वारा अपने दल के धर्म और अपने पक्ष के देवता को छोड़कर आगे बढ़िए। स्वार्थ-वश इनमें चिपके न रहिए। इन मृतक व्यवहारों और निर्जीव अज्ञानता के झमेले में न पड़िए। इस तरह से बुद्धि के उच्च मार्ग पर चलने और निर्मल सत्य पर अपना ध्यान रखने से आप सत्य अनुभव से नीचे के किसी विश्राम-स्थान पर नहीं रुक सकते।

उस मनुष्य का, जो दृढ़ता-पूर्वक हृदय से ध्यान करता है, सत्य मानो पहले बहुत दूरी पर दिखलाई पड़ता है। फिर प्रतिदिन के अभ्यास से वह सत्य का अनुभव करने लगता है। केवल सत्य वचनों को पालन करनेवाला ही सत्य के रहस्य को समझ सकता है। यद्यपि पवित्र विचार से सत्य का ज्ञान हो सकता है, तथापि उसकी वास्तविकता केवल अभ्यास से ही अनुभूत होती है।

जो जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूलकर सुख की तलाश में डींग हाँकने लग जाता है और व्यर्थ की बातों में मग्न रहकर ध्यान नहीं लगाता, वह एक दिन ध्यानस्थ रहनेवालों को देखकर

जी में कुढ़ेगा, उनसे ईर्ष्या करेगा। बुद्ध भगवान् ने अपने शिष्यों को निम्नांकित पाँच महत्त्व-पूर्ण ध्यानों की आज्ञा दी थी—

"सबसे पहला प्रेम का ध्यान है। इसमें आप अपने हृदय को इस तरह से ठीक करते हैं कि आप प्राणी-मात्र की भलाई और सुख की चिंता में व्याकुल हो उठते हैं, इस सुख-भावना में आपके शत्रुओं का भी सुख सम्मिलित रहता है।"

"दूसरा ध्यान दया का ध्यान है। इसमें आप स्पष्ट रूप से प्राणी-मात्र को दुःख में पड़ा देखते हैं और अपने ध्यान में उनकी तकलीफ़ों और चिंताओं का ऐसा स्पष्ट चित्र खींचते हैं और अपने ध्यान में लाते हैं कि आपके अंतःकरण में उनके लिये गहरी करुणा उत्पन्न हो जाती है।"

"तीसरा ध्यान प्रसन्नता का ध्यान करना है। इसमें आप दूसरों के सुख का ध्यान करते हैं और उनकी प्रसन्नता से सुखी होते हैं।"

"चौथा ध्यान अपवित्रता का ध्यान करना है। इसमें आप बेईमानी तथा दुराचार के दूषित परिणामों और पाप तथा रोगों से उत्पन्न होनेवाले दोषों को ध्यान में लाते हैं। अंत में आपकी धारणा यह होती है कि क्षणिक सुख कितना तुच्छ है और उसके परिणाम कितने प्राणघातक होते हैं।"

"पाँचवाँ ध्यान शांति का ध्यान करना है। इसमें आप प्रेम और घृणा, अत्याचार और पीड़न, संपन्नता और अभाव के भावों से परे हो जाते हैं और अपने ही भाग्य को आप पूर्ण शांति तथा निष्पक्ष निर्विकार दृष्टि से देखते हैं।"

इन्हीं ध्यानों की सहायता से बुद्ध भगवान् के शिष्यों ने सत्य का ज्ञान प्राप्त किया था। परंतु जब तक आपका ध्येय सत्य है और जब तक आप उस सदाचार के इच्छुक हैं, जिसका रूपांतर पवित्र हृदय और निष्कलंक जीवन है, तब तक चाहे आप इन विशेष ध्यानों में

मग्न हों या न हों, इससे कोई प्रयोजन नहीं। इसलिये आप अपने ध्यान में अपने हृदय को उदार तथा बृहत् बनाइए और उसमें निरंतर उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए प्रेम का प्रवेश होने दीजिए, ताकि अंत में वह घृणा, इंद्रिय-लोलुपता और दूसरों को निंद्य समझने की प्रवृत्ति और विषय-वासना से मुक्त होकर समस्त विश्व को विवेकमय प्रेम के साथ गले से लगाने को उद्यत हो जाय। जिस तरह से प्रभात की किरणों को अपनाने के लिये पुष्प अपनी पँखड़ियाँ खोलता है, उसी तरह से सत्य के ओजस्वी प्रकाश का प्रवेश कराने के लिये अपनी आत्मा को बराबर खुलकर विकसित होने दीजिए। उच्चाभिलाषाओं के पंखों पर चढ़कर ऊपर उड़िए, निर्भीक हूजिए, और उच्च-से-उच्च बातों की संभावना में विश्वास कीजिए। विश्वास कीजिए कि नितांत नम्रता का जीवन भी संभव है। यह भी विश्वास रखिए कि बेदाग और पवित्र जीवन भी संभव है। विश्वास रखिए कि पूर्ण शुद्धता का जीवन भी संभव है। विश्वास रखिए कि उत्तमोत्तम तथा सर्वोच्च सत्य का अनुभव करना भी संभव है। जिसका ऐसा विश्वास है, वह धड़ाके से स्वर्ग के ज़ीने पर चढ़ता है; और अविश्वासी कुहरे से आच्छादित घाटियों में बराबर भटका और कलपा करता है। ऐसा विश्वास करने पर, ऐसी उच्चाभिलाषा रखने पर और इस तरह से ध्यान लगाने पर आपका आध्यात्मिक अनुभव दिव्य, मधुर, सुंदर तथा सुखदायी होगा और जो प्रकाश आपके अंतःकरण के दिव्य चक्षुओं पर पड़ेगा, उसका सौंदर्य निराला और विजयकारी होगा। ज्यों-ज्यों आपको दिव्य न्याय, ईश्वरीय प्रेम, स्वर्गीय पवित्रता तथा सच्चिदानंद या परब्रह्म परमेश्वर के महान् नियम का अनुभव होता जायगा, त्यों-त्यों आप पर परमानंद की वृष्टि और गहरी शांति की छाया होगी। प्राचीन वस्तुएँ दूर हो जायँगी और

प्रत्येक वस्तु नवीन हो जायगी। भौतिक विश्व का परदा जो भ्रांतिमय मार्गों पर चलनेवालों की आँखों के लिये बिलकुल मोटा और अभेद्य होता है और सत्यदर्शी के सामने बिलकुल पतला और पारदर्शक होता है, उठ जायगा; और तदुपरांत आध्यात्मिक विश्व प्रकट हो जायगा। समय का अंत हो जायगा, परंतु आप अनंत रहेंगे। परिवर्तन और मृत्यु फिर आपको चिंता या दुःख न देंगे; क्योंकि आपकी स्थापना तो अपरिवर्तनशील (ईश्वर) में हो जायगी और अमरत्व के केंद्र ही में आपका निवास-स्थान होगा।

पद्य का अनुवाद

बुद्धि का सितारा

बुद्धि के सितारे ! तारा-हीन अर्द्धरात्रि की काली घटा और घोर अंधकार में आकाश की ओर देखकर अपनी चमक की प्रतीक्षा करनेवाले बुद्धिमानों को तूने ही बतलाया था कि विष्णु, बुद्ध, ईसा और कृष्ण का जन्म कब होगा। तू ही सभ्यता के आनेवाले साम्राज्य का चमकता राजदूत है। मनोविकार के स्थान में देवताओं की मानव-योनि की पैदाइश की गुप्त गाथा कहनेवाला तू ही है। विषाद से धँसते हुए हृदय और आनेवाली कठिनाइयों से व्यथित आत्मा को धीरे-धीरे अगाध उदारता तथा पवित्र प्रेम के रहस्य का गाना गाकर सुनानेवाला तू ही है। सीमातीत सौंदर्य के सितारे ! तू ही फिर उस अर्द्धरात्रि को चमकाता रहता है। तू साम्प्रदायिक अंधकार में पड़े हुए और त्रुटियों को पीस डालनेवाली चक्कियों से अनंत लड़ाई में थके हुए बुद्धिमानों को एक बार फिर ख़ुश तथा प्रसन्न-चित्त बना देता है। लोग निर्जीव, अनुपयोगी मूर्तियों से परेशान और मृत्यु-धर्म से हैरान थे। वे तेरी रोशनी की प्रतीक्षा में आधे हो रहे थे (यानी दुबले पड़ रहे थे)। अब तूने उनकी निराशा का अंत कर दिया, उनके मार्ग को प्रकाशमय बना दिया और पुरानी सत्य बातों को अपने दर्शकों के हृदय में ला दिया है। जो तुझसे प्रेम करते हैं, तू उनकी आत्मा को प्रसन्न तथा आनंदित करता है और विषाद-जन्य शांति को उनके सामने लाता है। रात्रि के समय चलते-चलते परेशान होनेवालों में से जो तुझको देख सकते हैं, वे धन्य हैं। तेरे प्रकाश की महती शक्ति से उनके हृदय में जो प्रेम उत्तेजित हुआ

है, उसके संचार को जान लेनेवाले भी धन्य हैं। वे बड़े ही भाग्य-वान् हैं। तू सचमुच अपनी शिक्षा हमको ग्रहण करने दे और इसको सच्चे हृदय से नम्रता-पूर्वक सीखने दे। हे पवित्र विष्णु-जन्म के प्राचीन सितारे! हे कृष्ण, बुद्ध तथा ईसा के प्रकाश! हमको अपनी शिक्षा नम्रता, बुद्धिमानी और प्रसन्नता के साथ सीखने दे।

दूसरा अध्याय

दो स्वामी—स्वार्थ तथा सत्य

मनुष्य के आत्मा नामी युद्ध-स्थल पर प्रधानता का मुकुट धारण करने तथा हृदय के साम्राज्य के सम्राट् बनने के लिये दो स्वामी सदैव लड़ा करते हैं। उनमें से एक तो उसका आत्मा नामधारी स्वार्थमय स्वामी होता है, जिसको इस जगत् का राजा भी कहते हैं; और दूसरा प्रतिद्वंद्वी सत्याधिपति होता है, जिसको परम पिता परमेश्वर कहते हैं। आत्मा नामधारी स्वामी एक ऐसा राजद्रोही व्यक्ति है, जिसके अस्त्र मनोवेग, अहंकार, प्रलोभन, स्वार्थेच्छा तथा अज्ञानता हैं। सत्य वह भोला-भाला सभ्य है, जिसके अस्त्रों में सभ्यता, धैर्य, पवित्रता, त्याग, नम्रता, प्रेम और प्रकाशज्ञान की गणना होती है।

हरएक आत्मा के अंदर यह युद्ध होता रहता है; परंतु जिस तरह एक सैनिक एक ही समय में दो प्रतिद्वंद्वी सेनाओं में काम नहीं कर सकता, उसी तरह से प्रत्येक हृदय को या तो स्वार्थमय आत्मा की सेना में भरती होना पड़ता है या सत्य की ओर अपना नाम लिखाना पड़ता है। कोई ऐसा मार्ग नहीं कि आप आधे इधर रहें, आधे उधर रहें। एक ओर सत्य है, दूसरी ओर आत्महित। जहाँ सत्य है, वहाँ आत्महित नहीं और जहाँ आत्महित है, वहाँ सत्य नहीं। बुद्ध भगवान् ने यही कहा था; और वह सत्योपदेशक थे। ईसा मसीह ने कहा था कि एक आदमी दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता; क्योंकि या तो वह एक से प्रेम और दूसरे से घृणा करेगा, या वह एक के पास रहेगा और दूसरे को घृणा कर छोड़ देगा। आप ईश्वर और कुबेर की साथ-ही-साथ पूजा नहीं कर सकते।

सत्य तो इतना सीधा, स्थिर और अटल है कि उसमें किसी प्रकार का पेंच या घुमाव-फिराव नहीं होता। स्वार्थ में प्रतिभा अवश्य होती है। वह पेचीदा होता है और विषमय सूक्ष्म इच्छाएँ उसको अपनी मुट्ठी में रखती हैं। उसमें इतने चक्कर और गर्त हैं जिनका अंत नहीं; और उसके भ्रम में पड़े उपासक व्यर्थ अपने मस्तिष्क को सातवें आसमान पर चढ़ाए रहते हैं और समझते हैं कि हम अपनी प्रत्येक सांसारिक इच्छा पूरी कर लेंगे और साथ-ही-साथ सत्य के भी अधिकारी बने रहेंगे। परंतु सत्य के भक्त स्वार्थ को छोड़कर सत्य की स्तुति करते हैं और नश्वर सांसारिक विषयों तथा स्वार्थ-साधन की इच्छा से अपने को बचाया करते हैं।

क्या आप सत्य को जानना और अनुभव करना चाहते हैं? तब तो आपको त्याग करने के लिये—अंतिम अवस्था तक त्याग करने के लिये तैयार हो जाना चाहिए, क्योंकि जब स्वार्थ का अंतिम पदांक भी लुप्त हो जायगा, तभी सत्य अपने प्रकाशमय रूप के साथ दिखलाई पड़ेगा।

अमर ईसा ने कहा था कि जो कोई मेरा शिष्य बनना चाहता है, उसे प्रति दिन अपने स्वार्थ का दमन करना चाहिए। तो क्या आप अपने स्वार्थ को छोड़ने, वासनाओं का दमन करने और अपनी प्राग्धारणाओं को तिलांजलि देने के लिये तैयार हैं? अगर ऐसा है, तो आप सत्य के संकीर्ण मार्ग में प्रवेश कर उस शांति का अनुभव कर सकते हैं, जिससे सारा संसार वंचित है। स्वार्थ को एक दम भस्म कर देना, उसका आद्योपांत लोप कर देना ही सत्य की पूर्ण अवस्था को प्राप्त करना है। जितने धार्मिक संप्रदाय और तत्त्व-ज्ञान की प्रणालियाँ हैं, सब इसी अवस्था को प्राप्त कराने में सहायक हैं।

सत्य का प्रत्याख्यान स्वार्थ है और स्वार्थ ही का अंत सत्य है।

ज्यों-ज्यों आप स्वार्थ का मृत होने लगे, त्यों-त्यों सत्य में आपका जन्म होगा। स्वार्थ में लीन होते ही सत्य आपसे ओझल हो जायगा।

जब तक आप स्वार्थ के पीछे पड़े रहेंगे, तब तक आपका मार्ग कठिनाइयों से भरा रहेगा; और दुःख, विषाद तथा निरुत्साह या निराशा का बार-बार आक्रमण ही आपके भाग्य में रहेगा। सत्य के मार्ग में कोई बाधा नहीं और सत्य की शरण लेने से सारी चिंता तथा निराशा से आप मुक्त हो जायँगे।

सत्य न तो छिपा है और न अंधकारमय ही है। वह सदैव प्रकाशमय और पूर्णतः पारदर्शक है। परंतु स्वेच्छाचारी तथा स्वार्थांध उसको देख नहीं सकते। सूर्य भगवान् की रोशनी अंधों को छोड़कर किसी से छिपी नहीं। उसी तरह स्वार्थियों को छोड़कर सत्य किसी से छिपा नहीं।

सत्य ही विश्व में वास्तविक वस्तु है। यही अंतःकरण का स्वरैक्य है, यही पूर्ण न्याय है और यही शाश्वत प्रेम है। न तो इसमें कोई वस्तु जोड़ी जा सकती है और न कोई वस्तु इससे पृथक् की जा सकती है। यह किसी मनुष्य पर निर्भर नहीं। हाँ, समस्त मनुष्य-जाति इस पर अवलंबित है। जब तक आपकी आँखों पर स्वार्थ के उपनयन रखे हैं, तब तक आप सत्य को नहीं देख सकते। अगर आप चमत्कारी हैं, तो आप अपने अहंकार से ही हरएक वस्तु को रँग देंगे। अगर आप कामी हैं, तो आपका दिल और दिमाग कामेच्छा के बादलों से इस तरह छिप जायगा कि उसमें से होकर हरएक वस्तु आपको अव्यवस्थित ही जान पड़ेगी। अगर आप अहंकारी हैं और अपनी ही राय को सर्वोपरि माननेवाले हैं, तो समस्त विश्व में आपको अपनी ही राय की उत्तमता और प्रधानता के अतिरिक्त और कुछ भी नजर न आवेगा।

एक ऐसा गुण है, जो नीर-क्षीर-विवेकी की तरह स्वार्थी और

सत्यपरायण मनुष्य को अलगा सकता है; और वह है नम्रता। केवल दर्प, हठ और अहंकार से मुक्त होना ही नहीं, बल्कि अपनी राय को भी बिल्कुल तुच्छ समझना ही सच्ची नम्रता है।

जो स्वार्थ में डूबा है, उसको अपनी ही सम्मति सत्य और दूसरों की भ्रममय मालूम होती है। परंतु जिस नम्र या सत्यप्रेमी ने सत्य और धारणा का अतर समझ लिया है, वह सबको दया की दृष्टि से देखता है। वह दूसरों के मुक़ाबले में अपनी राय को ही उचित ठहराने का यत्न नहीं करता; बल्कि वह उसको छोड़ भी देता है, ताकि उसके प्रेम का क्षेत्र और भी बढ़ जाय जिससे वह अपनी सत्य-परायणता और भी अधिक प्रकट कर सके। क्योंकि सत्य तो वह गुण है, जो अमिट है और जिसके अनुसार केवल जीवन ही बिताया जा सकता है। जिसमें अत्यधिक दया है, उसी में सत्यता की भी प्रचुरता है।

लोग बहस मुबाहिसे में लगे रहते हैं और समझते हैं कि हम सत्य की रक्षा कर रहे हैं। परंतु वास्तव में या तो वे अपनी उस राय का पक्ष लेकर जिसका अंत होना निश्चय है, लड़ते हैं या अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये झगड़ते हैं। आत्मपरायण सदैव दूसरों पर हथि-यार ताने खड़े रहते हैं। पर सत्यनिष्ठ अपने ही ऊपर हथियार चलाते हैं! सत्य नित्य तथा अविनाशी है, इसलिये उसको हमारी और आपकी राय से क्या सरोकार? चाहे हम सत्य-मार्ग में प्रवेश करें, चाहे बाहर रहें। हमारा पक्ष लेकर लड़ना या आक्रमण करना दोनो अनावश्यक हैं। वे हमारे ही ऊपर आकर पड़ते हैं।

जो लोग स्वार्थ के ग़ुलाम, इंद्रियलोलुप, घमंडी और दूसरो से घृणा करनेवाले होते हैं, वे अपने ही विशेष धर्म या संप्रदाय को सत्य मानते हैं। दूसरे धर्म उनके निकट मिथ्या होते हैं, वे बड़े उत्साह के साथ अन्य मतावलंबियों को अपने मत में लाने का प्रयत्न करते हैं।

संसार में केवल एक ही धर्म है और वह सत्य का धर्म है। एक ही अधर्म की बात है और वह है स्वार्थपरता। सत्य कोई दिखावटी विश्वास नहीं। वह तो केवल एक स्वार्थ-रहित, पवित्र तथा उत्साही हृदय का गुण है। जिसमें सत्य है, वह किसी से लड़ता-झगड़ता नहीं और सबको प्रेम-भाव से देखता है।

यदि आप शांति-पूर्वक अपने मस्तिष्क, हृदय और आचरण की परीक्षा करेंगे, तो आपको सहज में पता चल जायगा कि या तो आप सत्य के पालक हैं या स्वार्थ के उपासक हैं। या तो आपमें आशंका, शत्रुता, ईर्ष्या, काम, अहंकार आदि प्रवृत्तियों का निवास-स्थान है या आप उनसे यथाशक्ति ज़ोरों के साथ युद्ध किया करते हैं। यदि पहली बात है, तो चाहे आप किसी धर्म के अनुयायी क्यों न हों, आप अवश्य स्वार्थ के दास हैं। यदि दूसरी बात है, तो चाहे आप प्रकट में किसी धर्म को न मानते हों, परंतु आप सत्य-धर्मानुयायी बनने के लिये उम्मेदवार अवश्य हैं। या आप इंद्रियलोलुप, स्वेच्छाचारी, सदैव अपनी ही टेक रखनेवाले, भोगी, विलासी और अपना ही शुभ चाहनेवाले हैं; या आप एक सभ्य, नम्र, स्वार्थ-रहित और हरएक भोग-विलास से मुक्त ऐसे मनुष्य हैं, जो हर क्षण अपने को क़ुर्बान करने के लिये तैयार रहता है। अगर पहली बात है, तो आपका स्वामी स्वार्थ है, और यदि दूसरी बात है, तो आपके प्रेम का पात्र सत्य है। क्या आप धन के लिये यत्न करते हैं? क्या आप अपने दल के लिये उमंग के साथ प्राण देने को तैयार रहते हैं? क्या आपको अधिकार और नेतृत्व की अभिलाषा है? क्या आपमें दिखावे और स्वयं अपनी पीठ ठोकने की आदत है? क्या आपने धन से प्रेम करना छोड़ दिया है और तमाम लड़ाई-झगड़ों से हाथ खींच लिया है? क्या आप नीचातिनीच आसन पर बैठने के लिये तैयार हैं? अगर लोग आपको देखकर भी आपकी परवा न करें,

तो क्या आपको दुःख न होगा? क्या आपने अभिमान के साथ अपने विषय में बातचीत करना और अकड़कर अपने को निहारना छोड़ दिया है? यदि पहलेवाली बातें हैं, तो चाहे आप यही सोचते हों कि आप ईश्वर की पूजा करते हैं, परंतु आपके हृदय का उपास्य देव स्वार्थ है। और यदि दूसरी बातें हैं, तो चाहे आप ईश्वरोपासना में मुँह तक न खोलें, परंतु आप सर्वोच्च और सर्वोपरि परमात्मा की उपासना करते हैं।

सत्यनिष्ठ के लक्षण प्रज्ञात होते हैं। सुनिए, भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे भारत! जिस मनुष्य ने स्वर्ग में ले जानेवाले पवित्र पथ पर पाँव रक्खा होगा उसमें ये लक्षण होंगे—

"उसमें निर्भीकता, आत्मा की शुद्धता और बुद्धि-उपार्जन की सदैव प्रबल इच्छा होगी। उसका हाथ खुला और भूख-प्यास नियमित होगी। उसमें भक्ति और एकांत में स्वाध्याय करने से प्रेम होगा। उसमें नम्रता और ईमानदारी होगी। वह किसी सत्यानुयायी को सताने की फ़िक्र न करेगा। वह कभी क्रोध न करेगा। जिन वस्तुओं को लोग मूल्यवान् समझते हैं, वह उनकी भी विशेष परवा न करता होगा। उसमें वह शांति और करुणा होगी, जिसके कारण वह दूसरों की त्रुटियों से घृणा न करेगा। तमाम दुःखियों के प्रति उसमें प्रेम होगा। उसके हृदय में संतोष होगा और कोई कामना उसको विचलित न कर सकेगी। उसकी चाल में नम्रता, गंभीरता और मनुष्यता का सुंदर मिश्रण होगा। पवित्रता, शांति और संतोष की प्रचुरता भी उसकी चाल में होगी। उसमें बदला लेने की प्रवृत्ति न होगी और न वह अपने को बहुत बड़ा आदमी ही समझेगा।"

जब मनुष्य स्वार्थ तथा मिथ्या बातों के भ्रांत मार्गों में फँसकर स्वर्गीय जीवन, सत्य तथा पवित्रता की दिशाओं को भूल जाता है, तो वह कृत्रिम आदर्श खड़ा करके एक को दूसरे से तुलना करता है

और अपने विशेष अध्यात्म ज्ञान को ही सत्य का प्रमाण मानकर उसी पर चलता है। इस प्रकार मनुष्य एक दूसरे के ख़िलाफ़ बँट जाते हैं—उनमें भेद-भाव पड़ जाता है। उनमें निरंतर शत्रुता और मनमुटाव बना रहता है, जिसका फल अनंत दुःख और संताप होता है।

हे मेरे प्यारे पाठको! यदि आप जीवन में सत्य का अनुभव करना चाहते हैं, तो केवल एक ही मार्ग है। स्वार्थपरता (आत्महित-चिंतन) का विनाश हो जाने दीजिए। उन तमाम वासनाओं, इच्छाओं, पिपासाओं, संकीर्ण धारणाओं तथा प्रात्मधार-णाओं को, जिन पर आज तक आप गुड़-च्यूँटे की तरह चिपके थे, छोड़ दीजिए। फिर उनके बंधन में न पड़िए; और सत्य आपका पक्कर रहने के लिये बाध्य हो जायगा। अपने धर्म को अन्य धर्मों से विशिष्ट समझना छोड़कर नम्रता के साथ दया का प्रधान पाठ सीखिए। उदारता का पाठ पढ़िए। फिर इस बात को ध्यान में न आने दीजिए कि जिस देवता की आप स्तुति करते हैं, वही सचमुच एक देवता है; और जिन देवताओं की पूजा आपके भाई लोग करते हैं, और उनसे ही प्रेम से करते हैं वे सब झूठे हैं। यही भावना इतने क्रोध और दुःख का कारण है। इसके विपरीत आपको पवित्रता का मार्ग ढूँढ़ना चाहिए। तभी आपको पता चलेगा कि प्रत्येक मनुष्य मनुष्य-जाति का रक्षक है।

आत्मत्याग केवल बाह्य पदार्थों ही का त्याग नहीं है। इसमें अंतःकरण के पापों और भूलों का भी त्याग सम्मिलित है। केवल वस्त्रों का आडंबर छोड़ना ही यथेष्ट नहीं, धन-संपत्ति का त्याग या कुछ आहारों का परित्याग करने से ही या मीठी-मीठी बातें करने से ही, सारांश यह कि आप कह सकते हैं कि केवल इतना ही करने से सत्य की प्राप्ति न होगी, बल्कि आडंबर के ख़याल को ही छोड़ने से

और धनेच्छा को मारने से, भोग-विलास को दूर करने से, घृणा, झगड़ा-फ़साद, दूसरों को हेय समझने से और अपने ही स्वार्थ की लालसा रखने से, मुँह मोड़कर नम्र बनने और हृदय को पवित्र बनाने से सत्य की प्राप्ति हो सकेगी। केवल पहली बातों को करना और दूसरी बातों को न करना ढोंग और दंभ है। परंतु अगर आप पिछली बातें करेंगे, तो उनमें पहली भी शामिल हो जाएँगी। आप समस्त बाह्य जगत् की चीज़ों को छोड़कर कंदरा या जंगल में जाकर एकांत निवास किया कीजिए। परंतु जब तक स्वार्थ आपका साथ नहीं छोड़ता और जब तक आप स्वयं उसका त्याग नहीं करते, तब तक आपको अवश्य अत्यंत कष्ट उठाना पड़ेगा। ऐसा करना आपका केवल बड़ा भारी भ्रम होगा। आप जहाँ हैं, वहीं रहकर अपने तमाम कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं, परंतु तब भी आप संसार को छोड़ सकते हैं और यही आपका भीतरी शत्रु है। दुनिया में रहकर भी दुनिया का न होना, यही सबसे बढ़कर सिद्धावस्था है, यही स्वर्ग की शांति और सर्वोपरि विजय की प्राप्ति है। संसारी बातों को नहीं, बल्कि स्वार्थ को छोड़ना ही सत्य का मार्ग है। इसलिये आप इस पथ के अनुगामी बनिए।

घृणा के बराबर दु:ख नहीं, कामातुरता से बढ़कर पीड़ा नहीं और न इन्द्रियों से बढ़कर कोई धोखेबाज़ है। जिसने एक क़दम भी बढ़ाकर दुःखदायी बातों का दमन कर लिया, वह बहुत दूर निकल जाता है; इसलिये सत्यमार्गावलंबी बनिए।

ज्यों ही आप स्वार्थ पर विजय प्राप्त कर लेंगे, त्यों ही आपको वस्तुओं का वास्तविक संबंध मालूम हो जायगा। जिस पर किसी लालसा, भ्रमधारणा, पसंद या नापसंद की बात ने अधिकार जमा लिया, वह हरएक वस्तु को अपने ही ख़याल के अनुसार ठीक करना चाहता है और केवल अपने ही भ्रम की वस्तु देखता है। जो चित्त-

वेग, प्राग्धारणा, पक्षपात और पूर्वानुराग से बिलकुल ही परे हैं, वे अपने को वैसा ही देखते हैं, जैसे वे हैं। दूसरों को वे भी वैसा ही देखते हैं, जैसे वे हैं; और सारी वस्तुओं के उचित अधिकार और पारस्परिक संबंध का उन्हें ठीक-ठीक ज्ञान रहता है। परंतु न तो उनको किसी पर आक्रमण करना है, न किसी का पक्ष लेकर लड़ना है, न उनको किसी बात को छिपाना है, न किसी विशेष स्वार्थ की रक्षा करना है, और इसीलिये उनमें पूर्ण शांति भी रहती है। उन्होंने सत्य के सीधे मार्ग को ख़ूब जान लिया है, क्योंकि दिल और दिमाग़ की वह निष्पक्षता, शांति और भाग्यशालिता की अवस्था सत्य का ही रूप है।

जिसने इस अवस्था को प्राप्त कर लिया है, वह परमात्मा के चरणों में तथा स्वर्ग के देवताओं के साथ निवास करता है। जब कि वह महान् नियम का ज्ञाता है, जब उसको शोक की जड़ और दुःख का रहस्य मालूम है, साथ-ही-साथ जब वह यह भी जानता है कि इनसे मुक्ति पाने का मार्ग केवल सत्य है, तो वह क्यों व्यर्थ के झमेले में पड़ेगा और दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखेगा? यद्यपि वह जानता है कि भ्रम के बादलों से घिरा और मिथ्या तथा स्वार्थमय अंधकार से आच्छादित यह अंधा और स्वार्थ के पीछे बावला होनेवाला संसार सत्य के प्रकाश को नहीं जान सकता, और न उसमें यही समझने की शक्ति है कि स्वार्थ को छोड़नेवाला, या जिसने स्वार्थ का त्याग कर दिया है वह, क्यों इतना स्पष्टवादी और सीधे मिज़ाज का होता है; तो भी उसको यह मालूम है कि जब इन दुःखों के कारण शोक का पहाड़ खड़ा हो जायगा, तो संसार की कुचली और बोझ से दबी हुई ये आत्माएँ अंतिम शरण पाने को चेष्टा करेंगी; और जब ये दुःख के दिवस बीत जायँगे, तब हरएक अपव्ययी को सत्य की शरण लेनी पड़ेगी। इसलिये वह सबको प्रेम से देखता है और सबके साथ वैसे ही प्रेम करता है, जैसे पिता अपने दुराग्रही बालक पर प्रेम और दया करता है।

मनुष्य सत्य को नहीं समझ सकता; क्योंकि वह अपने स्वार्थ के पीछे पागल बना रहता है। उसी में उसका विश्वास और प्रेम है और आत्महित को ही वह एक सत्य बात मानता है, यद्यपि यह वास्तव में एक बड़ा भारी भ्रम है।

जिस वक्त आपका विश्वास और प्रेम स्वार्थ से छूट जायगा, उस वक्त आप स्वार्थ को छोड़कर सत्य की ओर दौड़ेंगे और आपको अटल तथ्य का पता चल जायगा।

जिस वक्त मनुष्य भोग-विलास, सुखेच्छा और अहङ्कार की मदिरा पानकर नशे में चूर हो जाता है, तो उसमें जीवन की पिपासा बढ़ने लगती है और बृहद् रूप धारण करने लगती है। फिर लोग इस दैहिक अमरता के भ्रम में पड़ जाते हैं; और जब अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है और दुःख-दारिद्र्य तथा चिंता पीछे पड़ती है, तो दर्पभंग तथा पद-दलित होने पर स्वार्थ-मदिरा का त्याग कर उनको दुःखित हृदय के साथ आध्यात्मिक अमरता की शरण लेनी पड़ती है। वास्तव में यही एक अमर अवस्था है, जो तमाम भ्रमों को दूर कर देती है और इसकी प्राप्ति सत्य द्वारा ही होती है।

मनुष्य चिंता के अंधकारमय द्वार से होकर स्वार्थ को छोड़कर, सत्य और बुराई को छोड़कर भलाई की ओर अग्रसर होता है; क्योंकि आत्महित और चिंता का संबंध अन्योन्य है। केवल सत्य-जन्य शांति और आनंद में सब दुःखों का अंत तथा नाश होता है। यदि इस कारण से कि आपकी कार्य-प्रणाली विफल हुई या कोई काम आपकी आशा के अनुकूल न उतरा, आप निरुत्साहित होते हैं, तो इसका कारण केवल यही है कि आप स्वार्थ-परायण हैं और स्वार्थ में लिपटे हुए हैं। अगर आप अपने आचरण के लिये पश्चात्ताप करते हैं, तो इसका भी यही कारण है कि आपने अपने स्वार्थ के सामने सिर झुका दिया है। अगर आप अपने प्रति किसी दूसरे के बर्ताव के कारण अत्यंत

दुःखी हैं, तो इसका भी यही कारण है कि आपने अपने अंदर स्वार्थ का साँप पाल रक्खा है। अगर आपको अपने साथ किए गए व्यवहारों और अपने बारे में कही गई बातों पर दुःख और संताप है, तो इसका भी यही कारण है कि आप दुःखदायी स्वार्थ-पथ पर चल रहे हैं। यहाँ भी स्वार्थ सब दुःखों का कारण होता है और सत्य सब दुःखों के नाश का कारण होता है। जिस वक्त आप सत्य-मार्ग में प्रवेश कर सत्य को प्राप्त हो जायँगे, उस वक्त फिर निरुत्साह, पश्चात्ताप और संताप आपको न सतावेंगे और चिंता आपसे दूर भाग जायगी।

"स्वार्थ ही एक ऐसा कारागार है, जिसमें आत्मा क़ैद की जा सकती है। सत्य ही एक ऐसा स्वर्गीय दूत है, जो क़ैदख़ाने के तमाम दरवाज़ों के खुलने की आज्ञा दे सकता है। जिस वक्त सत्य आपको बुलाने आवे, उस वक्त तुरत उठकर आपको उसका पीछा करना चाहिए। चाहे सत्य के मार्ग के आरंभ में कुछ अँधेरा भी मिले, परंतु अंत में आपको प्रकाश मिलेगा।'

संसार के दुःख मनुष्य के कर्तव्यों के ही फल हैं। शोक आत्मा को पवित्र और गंभीर बनाता है और शोक की अंतिम दुःखदायी अवस्था सत्य के विकास की अग्रगामिनी होती है।

क्या आपने बहुत दुःख झेला है? क्या आप गहरी चिंता के शिकार बन चुके हैं? क्या आपने जीवन-प्रश्न पर गंभीरता के साथ विचार किया है? यदि ऐसा है, तो आप स्वार्थपरता से युद्ध करने और सत्य के शिष्य बनने के लिये तैयार हो गए हैं।

चतुर लोग, जिनको स्वार्थत्याग आवश्यक प्रतीत नहीं होता, संसार के विषय में संख्यातीत कल्पनाएँ गढ़कर उन्हीं को सत्य मानने लग जाते हैं। परंतु आप उस सीधे मार्ग का अवलंबन कीजिए, जिसको सत्य का अभ्यास कहते हैं और आपको सत्य का अनुभव हो जायगा;

क्योंकि सत्य कल्पना में नहीं है। वह तो एक अपरिवर्तनशील वस्तु है। आप अपने हृदय को सुधारिए। उसको निःस्वार्थ-प्रेम तथा गहरी दया के पानी से निरंतर सींचिए। प्रेम के नियम से मेल न खानेवाले प्रत्येक विचार और भावना को दूर रखिए। बुराई के बदले भलाई, घृणा के बदले प्रेम और बुरे बर्ताव के बदले में सभ्यता का बर्ताव कीजिए और आक्रमण होने पर चुप रहिए। इस प्रकार आप अपनी स्वार्थमय वासनाओं को प्रेम के पवित्र स्वर्ण में परिवर्तित कर देंगे और सत्य में स्वार्थपरता का लोप हो जायगा। इस प्रकार नम्रता का पवित्र वस्त्र धारण करके आप मनुष्यों के समाज में बेदाग जीवन बिता सकेंगे।

पद्य का अनुवाद

ऐ श्रम से चूर भाई ! आओ ! अपने समस्त यत्नों तथा प्रयत्नों का अंत अनुकंपा के स्वामी (दयासागर) के हृदय की तलाश में कर दो। सत्य के सागर के लिये तृषित होकर स्वार्थ की निर्जन मरु-भूमि में होकर जाने से क्या लाभ ?

भला कब तुम्हारे इस पापमय जीवन और अनुसंधान मार्ग पर चलने से यहाँ जीवन का आनंददायी चश्मा बहेगा और इस मरु-भूमि में प्रेम का हरा-भरा रम्य स्थान दृष्टिगोचर होगा ? इसलिये आओ। वापस आओ। विश्राम करो और अपने मार्ग का अंत और आरंभ जान लो। द्रष्टा और दृश्य को पहचान लो। ढूँढनेवाले और ढूँढने की वस्तु का भी ज्ञान प्राप्त कर लो। फिर आगे बढ़ना।

तुम्हारा स्वामी न तो अगम्य पहाड़ियों में निवास करता है और न वायु की मरीचिका में ही उसके रहने का स्थान है ! न तो तुम उसके अद्भुत फुहारे को उस बालूवाले रास्ते पर ही पाओगे, जिसके चारो ओर निराशा-ही-निराशा है।

अपने राजा के पदांकों को स्वार्थ की अंधकारमय मरुभूमि में खोजना छोड़ दो। व्यर्थ को थकने से क्या लाभ। अगर तुमको उसकी मधुर वाणी सुनने ही की इच्छा है, तो फिर इन व्यर्थ के तमाम पचड़ों का राग सुनना छोड़ दो—उनसे कान फेर लो।

विनाशकारी स्थानों से भाग आओ। अपनी तमाम बातों का त्याग कर दो। जिन बातों से तुमको प्रेम है, उनको भी छोड़ दो और नंगे, विवश होकर अंतःकरण के पवित्र मंदिर में प्रवेश करो। वहीं पर सर्वोच्च, सर्वोपरि, पवित्र तथा परिवर्तन-मुक्त परब्रह्म का निवास-स्थान है।

शांत हृदय में ही उसका निवास होता है । चिंता तथा आपे को छोड़ो और चारों ओर भटकना तथा घूमना त्यागो । आओ, उसकी प्रसन्नता के समुद्र में गोते लगाओ और उसकी आवाज़ को अपने कानों से सुनो कि वह तुमको क्या बतला रहा है । फिर भटकने की आवश्यकता ही न रहेगी ।

ऐ थके भाई ! दयासागर के हृदय को प्राप्त कर शांत होकर रहो और तमाम झंझट और झमेला छोड़ो । व्यर्थ के प्रयत्न से क्या लाभ । स्वार्थ के मिथ्या रेगिस्तान पर दौड़ना त्यागो और आकर सत्य समुद्र के सुंदर पानी से अपनी प्यास बुझाओ ।

तीसरा अध्याय

आध्यात्मिक शक्ति का उपार्जन

संसार ऐसे स्त्री-पुरुषों से भरा हुआ है, जो सुख, नवीनता और उत्तेजना के लिये सदैव लालायित रहते हैं। वे बराबर हँसाने तथा रुलानेवाली वस्तुओं की ही खोज में पड़े रहते हैं। वे शक्ति, बल, स्थिरता के इच्छुक नहीं, बल्कि वे सदैव निर्बलता का आवाहन करते हैं और अपनी शक्ति को उमंग के साथ खोने में तत्पर रहते हैं। वास्तविक शक्ति तथा प्रभाव के अधिपति बहुत ही थोड़े स्त्री-पुरुष हैं; क्योंकि शक्ति के उपार्जन के लिये जिस त्याग की आवश्यकता है, उसके लिये वे तत्पर नहीं। धैर्य के साथ अपने जीवन को सदाचारी बनानेवालों की संख्या तो और भी थोड़ी है।

अपने परिवर्तनशील विचारों और भावनाओं की धारा में बह जाना अपने को निर्बल तथा शक्ति-हीन बनाना है। उन शक्तियों को ठीक तौर पर प्रयोग में लाना और उनको उचित मार्ग में लगाना अपने को सबल तथा शक्तिशाली बनाना है। जिन मनुष्यों में प्रबल पाशविक वृत्तियों की बहुलता होती है, उनमें पाशविक भीषणता का भी आधिक्य होता है। परंतु यह कोई शक्ति नहीं। शक्ति की सामग्री वहीं पर है। परंतु वास्तविक शक्ति केवल उसी समय प्रारंभ होती है, जब कि इस भीषणता को इससे कहीं सच्ची बुद्धि से जीत लिया जाता है। लगातार बुद्धि तथा चेतना को उन्नत तथा उच्च बनाने से ही मनुष्य अपनी शक्ति बढ़ा सकता है।

शक्तिशाली तथा निर्बल मनुष्य का अंतर उसकी व्यक्ति-गत संकल्प शक्ति में नहीं होता, बल्कि उस ज्ञानावस्था में उसका भेद मालूम

होता है, जिसको ज्ञान की दशा कहते हैं; क्योंकि हठी मनुष्य प्रायः निर्बल और मूर्ख होता है।

सुखेच्छा से आतुर, उत्तेजना के लिये विक्षिप्त और नवीनता के लिये लालायित रहनेवाले और भावनाओं तथा क्षण-भंगुर मनोवेग के आखेट बननेवाले लोगों में उस सिद्धांत के ज्ञान का अभाव होता है, जिस सिद्धांत को जान लेने से स्थिरता, प्रभावशालिता और दृढ़ता आती है।

अपने क्षणिक मनोवेग और स्वार्थमय प्रवृत्तियों को रोकने से शक्ति की वृद्धि आरंभ होती है; क्योंकि इस दशा को प्राप्त होने पर ही मनुष्य अपने अंतःकरण की इससे भी उच्च और शांतिमय चेतना की शरण में जाता है और किसी सिद्धात को लेकर उस पर दृढ़ बनने लग जाता है।

चेतना के स्थायी सिद्धांतों का अनुभव होना तत्काल ही सर्वोच्च शक्ति के मूल-कारण और रहस्य को प्राप्त करना है।

जिस वक्त बहुत दु:ख, तलाश और त्याग के बाद किसी ईश्वरीय सत्ता का प्रकाश आपकी आत्मा पर पड़ता है, उस वक्त दिव्य शांति सहचरी बनकर आती है और वर्णनातीत सुख हृदय को प्रफुल्लित बना देता है।

जिसने ऐसी सत्ता का अनुभव कर लिया, उसका भटकना दूर हो जाता है। उसमें समता का भाव आ जाता है और अपने ऊपर अधिकार हो जाता है। वह मनोवेग का ग़ुलाम नहीं रह जाता, बल्कि भाग्य-मंदिर में एक सिद्धहस्त शिल्पकार हो जाता।

जिस मनुष्य पर स्वार्थ का अधिकार है और जिसका कोई सिद्धांत नहीं, उसको जिस वक्त अपनी स्वार्थमय सुविधाओं में बाधा पड़ती दिखलाई देती है, उसी समय अपना रुख़ बदलने में वह देर नहीं लगाता। वह अपने स्वार्थ की रक्षा और पक्ष पर ज़ोरों के साथ तुला होता है, इसलिये जिस तरह से उसका मतलब हासिल हो सके, उसके लिये

वह सब न्यायानुमोदित है । वह बराबर सोचा करता है कि किस तरकीब से मैं अपने दुश्मनों से बच सकता हूँ; क्योंकि वह अपने स्वार्थ में इतना लीन होता है कि उसको पता ही नहीं चलता कि वह स्वयं अपना दुश्मन है । ऐसे आदमी का किया काम हमेशा व्यर्थ जाता है ; क्योंकि उसमें सत्य और शक्ति नहीं होती । स्वार्थ के लिये जो यत्न किया जाता है, वह व्यर्थ जाता है । केवल वही काम स्थायी होता है, जिसका आधार अनुपम सिद्धांत होता है ।

जो मनुष्य किसी सिद्धांत पर अटल रहनेवाला है, वह बराबर अपने को शांत, निर्भीक और अपने क़ाबू में रखता है, चाहे परिस्थिति कैसी ही क्यों न हो । जब परीक्षा का समय आता है और उसको अपनी व्यक्ति-गत सुविधाओं और सत्य में से एक को चुनना होता है, तब वह अपनी सुविधाओं को छोड़कर दृढ़ रहता है । यंत्रणा तथा मृत्यु की आशंका भी उसको अपने निर्णय से डिगा और हटा नहीं सकती । स्वार्थी मनुष्य अपने धन, सुविधाओं या जीवन की हानि अपने लिये मनुष्य पर आनेवाली सबसे भारी विपत्ति समझता है । एक सिद्धांतवाले मनुष्य के लिये ऐसी घटनाएँ तुलनात्मक दृष्टि से तुच्छ हैं । आचरण या सत्य के साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती । सत्य का त्याग करना ही केवल एक ऐसी घटना है, जो उसके निकट वास्तव में विपत्ति कही जा सकती है ।

संकट के समय में ही इस बात का निर्णय हो सकता है कि कौन अंधकार-वल्लभ हैं और कौन प्रकाश के पुत्र हैं, अर्थात् किस पर प्रकाश (सत्य) की कृपा है । विनाश विपत्ति तथा अभियोग की धमकी के ही समय में यह फ़ैसला हो सकता है कि कौन बकरी है, कौन भेड़ है; और इसी से उनके पश्चात् की पीढ़ी के भक्ति-भाव से निरीक्षण करनेवाले मनुष्य को भी पता चल सकता है कि वास्तव में शक्तिशाली स्त्री या पुरुष कौन थे ।

जब तक कोई मनुष्य अपने अधिकार का निर्द्वंद्व होकर भोग-विलास कर रहा हो, तब तक उसके लिये यह विश्वास करना सरल है कि मैं शांति, भ्रातृ-भाव और विश्व-प्रेम के सिद्धांतों में विश्वास करता हूँ, और उन्हीं पर चलता हूँ। परंतु जिस वक्त उसके भोग-विलास छीनने की सामग्री इकट्ठा होने लगती है या उसको भ्रम ही हो जाता है कि ऐसा होने का डर है, अगर उस वक्त वह ज़ोरों के साथ शोर-गुल मचाना आरंभ करता और लड़ने को तैयार हो जाता है, तो समझना चाहिए कि शांति, भ्रातृ-भाव और प्रेम में उसका विश्वास नहीं है और न उसके जीवन के ये सहारे हैं, बल्कि झगड़ा-फ़साद? स्वार्थ-परता और घृणा ही उसके जीवन के प्रधान विषय हैं।

जो मनुष्य जगत् की तमाम बातों से हाथ धोने का भय दिलाने से, यहाँ तक कि अपनी इज़्ज़त और जीवन पर भी आशंका हो जाने से अपने सिद्धांतों को नहीं तजता, वही सच्चा शक्तिशाली है। वही एक ऐसा मनुष्य है, जिसकी कीर्ति और वाक्य अमर हो जाते हैं। बाद के लोग उसी की स्तुति, आदर और उपासना करते हैं। बजाय इसके कि ईसा अपने पवित्र प्रेम के सिद्धांत को, जिस पर उनका जीवन निर्भर था, छोड़ते, उन्होंने अत्यंत दुःखदायी दशा की पीड़ा को सहन किया और भारी-से-भारी क्षति उठाई, क्योंकि अपने सिद्धांत में उनको विश्वास था। आज संसार भक्ति-भाव से मुग्ध होकर उन्हीं ईसामसीह के छेदे हुए चरणों पर मस्तक नवाता है।

अंतःकरण के उद्भासन और ज्ञानोद्दीप के अतिरिक्त, जो आध्यात्मिक सिद्धांतों का अनुभव करता है, आध्यात्मिक शक्ति के उपार्जन का कोई अन्य मार्ग नहीं। इन सिद्धांतों का अनुभव केवल निरंतर अभ्यास और प्रयोग से ही संभव है।

पवित्र प्रेम के ही सिद्धांतों को ले लीजिए और शांति-पूर्वक दिल लगा-

कर इस पर पूरा ध्यान लगाइए, ताकि आप उसको अच्छी तरह समझ जायँ। फिर इसके अनुसंधान से जो ज्ञान पैदा हो, उससे अपनी दैनिक क्रियाओं, कार्यों, भाषणों और दूसरों के साथ के वार्तालापों में लाभ उठाइए। अपने गुप्त विचारों तथा इच्छाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ने दीजिए। ज्यों-ज्यों आप दृढ़कर इस रीति पर चलते जायँगे, त्यों-त्यों पवित्र प्रेम का प्रभाव आपको और अधिक मालूम होता जायगा और आपकी निर्बलताएँ और अधिक स्पष्ट रूप से स्पर्धा करना आरंभ कर देंगी, जिसका फल यह होगा कि आप फिर से उद्योग करने के लिये उत्तेजित हो जायँगे। यदि इस अविनाशी सिद्धांत का अतुल विभूति की छाया-मात्र के भी आपको एक बार दर्शन हो जायँ, तो फिर आपको अपनी कमज़ोरी, अपने स्वार्थ और अपनी अपूर्णावस्था में ही शांति न मिलेगी, बल्कि आप उस पवित्र प्रेम के मार्ग पर तब तक चलते जायँगे, जब तक प्रत्येक परस्पर विरुद्ध अवस्था दूर न हो जायगी और आप पूर्णतः प्रेम-मूर्ति न बन जायँगे। अंतःकरण की इसी अनुरूपता की अवस्था को आध्यात्मिक शक्ति कहते हैं। दूसरे आध्यात्मिक सिद्धांतों को, जैसे पवित्रता और दया को लीजिए और उसी तरह से उनका भी प्रयोग कीजिए। सत्य का मार्ग इतना प्रबल है कि जब तक आपके अंतःकरण का वस्त्र बिलकुल ही बेदाग़ नहीं हो जाता और आपका हृदय ऐसा नहीं हो जाता कि उसमें किसी प्रकार की क्रूरता, घृणा और अनुदारता के भाव को स्थान न मिले, तब तक आप अपने उद्योग में रुक नहीं सकते, विश्राम नहीं कर सकते।

जिस सीमा तक आप इन सिद्धांतों को समझेंगे, अनुभव करेंगे और जितना ही आप इन पर भरोसा करेंगे, उतना ही वह शक्ति आपमें विकसित होगी, और आपको माध्यम बनाकर धैर्य, विराग और शांति के रूप में अभिव्यक्त होगी।

विराग का होना इस बात का सबूत है कि मनुष्य में उच्च कोटि की आत्मवशता है; और पूर्ण धैर्य तो ईश्वरीय ज्ञान का केंद्र-चिह्न ही है। जीवन की झंझटों और बुरी दशाओ में अटूट शांति को क़ायम रखना ही शक्तिशाली मनुष्य की पहचान है। संसार में दूसरों की राय पर जीवन बिताना सहज है और एकांत में निश्चित की हुई अपनी राय पर चलना भी उतना ही आसान है। परंतु शक्तिशाली मनुष्य तो वह है, जो खचाखच भरे हुए लोगों के बीच में भी पूर्ण शांति के साथ अपनी एकांत की स्वतंत्रता क़ायम रख सके।

कुछ भावयोगियों की धारणा तो यह है कि विराग की पूर्णावस्था ही वह शक्ति है, जिसके आधार पर अलौकिक कार्य (करामात) किए जाते हैं। सचमुच ही जिस मनुष्य ने अपने अंतःकरण की शक्तियों पर इतना पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है कि चाहे कितनी ही भारी विपत्ति आ पडे, परंतु एक क्षण के लिये भी उसकी शाति भग न होगी, उसमें अवश्य यह योग्यता आ गई होगी कि जिस तरह से चाहे, वह इन शक्तियों को सिद्धहस्त की भाँति घुमा-फिराकर उनसे काम ले सकता है।

आत्मसंयम, धैर्य और शाति को बढ़ाना शक्ति और बल को बढ़ाना है; और इसी तरह से अपने ध्यान को किसी एक बात पर लगाकर आप उन्नति कर सकते हैं। जिस तरह से एक शिशु असख्य बार यथाशक्ति उद्योग करने पर और अनेकों बार विना किसी की सहायता चलने में गिरकर अंत में अपने उद्देश्य में सफल होता है, उसी तरह से आपको भी पहले किसी की सहायता से खड़े होकर शक्ति-मार्ग में प्रवेश करना चाहिए। रस्म-रिवाज, परंपरा, चाल और दूसरों की राय के अत्याचारो से तब तक पृथक् रहने का यत्न कीजिए, जब तक विना किसी दूसरे की सहायता के आप लोगो में अकेले

भकझकर न चल सकें। अपने निर्णय पर भरोसा कीजिए। अपने अंतःकरण के प्रति सच्चे रहिए। अपने अंदर के ही प्रकाश के सहारे चलिए। तमाम बाहरी प्रकाश का सहारा छोड़ दीजिए। ऐसे लोग भी होंगे, जो आपसे कहेंगे कि "तुम मूर्ख हो। तुम्हारा निर्णय भ्रांत है। तुम्हारा अंतःकरण सदैव असत्य कहता है। तुम्हारे अंदर का प्रकाश वास्तव में अंधकार है।" परंतु उनकी परवा मत कीजिए और न उनकी बात सुनिए। अगर उनका कहना सत्य है, तो सत्य बुद्धि के उपार्जनाभिलाषी होने से जितना ही जल्द आपको इसका पता चल जाय, उतना ही अच्छा है; और आप केवल अपनी शक्ति की परीक्षा करके इसका पता चला सकते हैं। इसलिये बहादुरी के साथ अपने मार्ग पर चले चलिए। कम-से-कम आपका अंतःकरण तो अपना है और उसकी आज्ञा मानना अपने को मनुष्य बनाना है। दूसरों के अंतःकरण की बात मानना अपने को गुलाम बनाना है। कुछ समय तक तो आपको अनेकों बार नीचा देखना पड़ेगा, बहुत तरह के घावों की पीड़ा सहनी पड़ेगी, और अनेकों बार विफल होने का भी मज़ा उठाना पड़ेगा। परंतु विश्वास करके आगे बढ़ते जाइए और अपने दिल में यही विश्वास रखिए कि निश्चय विजय सामने है। किसी चट्टान की तलाश कीजिए। यह चट्टान एक सिद्धांत होगी; और फिर उसी से चिपक जाइए। उसको अपने अधिकार में पाँवों के नीचे रखकर उसी के आधार पर खड़े हो जाइए और तब तक खड़े रहिए, जब तक आपका पाँव उसी में इस तरह से नहीं गड़ जाता कि फिर डिगाए से भी न डिगे। इसका अंतिम फल यह होगा कि स्वार्थ-परता के झोंकों और लहरों का आप पर कुछ भी असर न होगा। स्वार्थ परता हरएक और किसी भी दशा में निर्बलता, मृत्यु या अपनी शक्ति का नाश है। आध्यात्मिक रूप से स्वार्थ पर होना जीवन, शक्ति और अपने बल की रक्षा करना है।

ज्यों-ज्यों आप आध्यात्मिक जीवन में तरक्क़ी करते जायँगे, त्यों-त्यों उन सिद्धांतों के मान लेने पर आपमें भी उतनी ही स्थिरता और सौंदर्य आता जायगा, जितना कि उन सिद्धांतों में है। उनकी अमर सत्ता का मधुर स्वाद भी आपको मिलता जायगा। आपको अपने अंतःकरण के अंदर बैठे हुए ईश्वर की अविनाशी तथा अमर सत्ता का अनुभव हो जायगा।

पद्य का अनुवाद

न्याय-परायण मनुष्य तक कोई घातक तीर नहीं पहुँच सकता। वह घुणाधों के अंधड़ों के बीच में भी सीधा खड़ा रहता है और क्षति, अभिशाप तथा घाव को बिलकुल ही तुच्छ या नाचीज़ समझता है—बराबर उनका अनादर करता है। भाग्य के काँपते हुए गुलाम उसको घेरे ही रहते हैं।

गुप्त शक्ति के बल पर वह अकड़ा हुआ राजसी ठाट से शांति-मूर्ति की तरह खड़ा रहता है। न तो वह अपना ढंग ही बदलता है, न अपने पथ से पीछे ही हटता है। घोर विपत्ति के काल में भी वह धीर और दृढ़ रहता है। ज़माना उसके सामने सिर झुकाता है और मृत्यु तथा अभाग्य को वह घृणा की दृष्टि से देखता है—उनकी कुछ भी परवा नहीं करता।

क्रोध के बवंडर उसके चारो ओर उठा और खेला करते हैं। नरक-वेदना का घोर चीत्कार उसके मस्तिष्क के चारो तरफ़ चक्कर लगाया करता है, परंतु प्रवेश नहीं कर पाता। तब भी वह उनको सुनकर भी अनसुनी कर देता है; क्योंकि उसको तो वे मार नहीं सकते। वह तो उस जगह पर खड़ा है, जहाँ से पृथ्वी, आकाश और काल भी भाग जाते हैं।

जब अमर प्रेम उसका रक्षक है, तो फिर उसको डर क्या ? स्थायी सत्य से आच्छादित रहने पर, क्षति-लाभ को वह क्या जानता और समझता है ! नित्य का ज्ञान होने से, विपत्ति-आपत्ति आती और जाती रहती है, परंतु वह नहीं डिगता।

जो घोर अंधकारमय रात्रि में भी बाज़ी लगाता है, चाहे उसको

अमर कहिए, चाहे सत्य या प्रकाश कहकर पुकारिए, चाहे पैग़ांबरी सत्ता कहिए। और वह क्यों न बाज़ी लगावे? पवित्रता की चमकती हुई चादर तो उसको ढके हुए है।

चौथा अध्याय

निष्काम प्रेम की प्राप्ति

कहा जाता है कि माइकेल एंजलो (Michael Angelo) को प्रत्येक पत्थर की खुर्दरी चट्टान में भी एक दिव्य मूर्ति दिखलाई देती थी। उसका कहना था कि केवल एक सिद्ध पुरुष की आवश्यकता है, जो उसको वास्तविक रूप दे सके। ऐसे ही प्रत्येक मनुष्य के हृदय में दिव्य मूर्ति विद्यमान है। आवश्यकता है विश्वासरूपी सिद्ध हाथ और धैर्य की छुआनी की, ताकि उसको व्यक्ति-रूप में प्रकट कर दिया जाय। बेदाग और स्वार्थ-रहित प्रेम के ही रूप में उस दिव्य मूर्ति का आविर्भाव और अनुभव हो सकता है।

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में पवित्र प्रेम का भाव छिपा रहता है। हाँ, यह भी है कि प्रायः इस पर अभेद ठोस मैल भी जम जाता है। परंतु प्रेम की पवित्र तथा शुद्ध सत्ता अमर और अविनाशी है, नित्य है। मनुष्य के स्वभाव में यही सत्य असल और अमर चीज़ है— यही ईश्वर का अंश है। यही सत्य अजर-अमर है। इसके अलावा तमाम बातें बदलती और नष्ट होती रहती हैं। केवल यही स्थायी और अविनाशी है। सर्वोच्च सत्य-परायणता के अभ्यास में इस पवित्र प्रेम को प्राप्त कर लेना, इसी में जीवन बिताना और इसकी विभूति को अच्छी तरह से जान लेना ही अभी और यहीं अमरता को प्राप्त करना, सत्य का रूप धारण करना, ईश्वर में लीन होना, जगत् की तमाम वस्तुओं के कारण का रूप बनना और अपनी पवित्र तथा नित्य प्रकृति को जानना है।

इस प्रेम तक पहुँचने, इसको समझने और अनुभव करने के लिये

अपने दिल और दिमाग़ को दृढ़ता-पूर्वक पूर्ण परिश्रम के साथ ठीक करना पड़ेगा। अपने धैर्य को प्रतिदिन नवीन और विश्वास को प्रौढ़ बनाना होगा, क्योंकि दिव्य सौंदर्यमय मूर्ति के उद्घाटन के पूर्व बहुत-सी बातों को दूर करना और बहुत कुछ काम पूरा करना होगा।

पवित्र परमेश्वर तक पहुँचने की चेष्टा और अभिलाषा रखनेवाले की अंतिम दर्जे की परीक्षा होगी। यह नितांत आवश्यक है; क्योंकि कोई इसके बिना और किस प्रकार उस महान् धैर्य को प्राप्त कर सकता है, जिसके बिना वास्तविक बुद्धि और पवित्रता का होना असंभव है? सदैव और ज्यों ही वह आगे बढ़ेगा, उसका तमाम काम उसको व्यर्थ और निरर्थक मालूम होगा, और उसका ऐसा प्रतीत होगा कि मेरे यत्न निष्फल हो गए। कभी-कभी ऐसा भी होगा कि ज़रा जल्दबाज़ी के कारण उसकी मूर्ति फीकी पड़ जायगी, बिगड़ जायगी। कदाचित् ऐसा भी होगा कि जिस वक़्त वह सोचने लगेगा कि अब मेरा काम समाप्त ही होना चाहता है, एकाएक ऐसा होगा कि जिसको वह पवित्र प्रेम का पूर्ण सुंदर स्वरूप समझता था, वह एकदम नष्ट हो जायगा। ऐसी दशा में अपने पहले कटु अनुभव की सहायता और नेतृत्व में उसको नए सिरे से अपना काम आरंभ करना होगा। परंतु जिसने सर्वोत्तम का अनुभव करना ठान ही लिया है, वह किसी बात को पराजय मानता ही नहीं। तमाम विफलता दिखावटी होती हैं, असली नहीं। जब कभी आपका पाँव फिसलेगा, जब कभी आप गिरेंगे और जब कभी आप स्वार्थ-परता के चंगुल में फिर से पड़ जायँगे, तब आप एक नया पाठ सीख लेंगे। आप एक ऐसा नया अनुभव प्राप्त कर लेंगे, जिससे बुद्धि का एक सुनहला कण आपको मिल जायगा। इस तरह से अपने उच्च उद्देश की पूर्ति में उस यत्नशील को सहायता मिलेगी।

इस बात को मान लेना कि अगर हम अपने प्रत्येक लज्जास्पद कार्य को पाँव तले कुचलेंगे, तो हम अपनी प्रत्येक ग़लती से अपने लिये एक सीढ़ी बना सकते हैं, उस रास्ते पर पाँव रखना है, जो हमें दिव्य मूर्ति के दर्शन अवश्य करा देगा।

जिस मनुष्य की धारणा ऐसी हो जाती है, वह अपनी हरएक ग़लती के अनुभव से आगे बढ़ने की एक सीढ़ी बनाकर उसी तरह आगे बढ़ता है, जैसे कि मनुष्य एक सीढ़ी से दूसरी पर कूदकर जाता है।

एक बार आप अपनी विफलताओं, अपने दुःखों और पीड़ाओं को मान लीजिए कि ये हममें इतनी बुराइयाँ हैं; और यह साफ़-साफ़ बतला रही हैं कि हममें कहाँ पर कमज़ोरी और त्रुटि हैं; और किस जगह हम सत्यता और पवित्रता से नीचे हैं; फिर आप लगातार अपनी देख-भाल करना शुरू कर देंगे। हरएक फिसलन और हृदय की वेदना आपको बतलावेगी कि किस जगह पर काम करना है, और अपने हृदय से क्या निकालकर दूर भगाना है, ताकि हम पवित्र भगवान् और पूर्ण प्रेम की कुछ अधिक अनुरूपता प्राप्त कर सकें। ज्यों-ज्यों आप प्रतिदिन अपनी भीतरी स्वार्थ-परता के भाव से हटते जायँगे, त्यों त्यों आप पर निःस्वार्थ प्रेम प्रकट होता जायगा। जब आपका धैर्य और शांति बढ़ने लगे, जब आपका चिड़चिड़ापन, आपकी दुःशीलता और बुरा स्वभाव दूर होने लगे, और पूर्ण प्रलोभन तथा प्राग्धारणाएँ आपको छोड़ने लगें और आप उनके ग़ुलाम न रह जायँ, तो आपको समझ लेना चाहिए कि आपके अंदर पवित्रता की जागृति शुरू हो गई, आप सबके मूल-कारण का रूप धारण करने लगे और अब आप उस निःस्वार्थ प्रेम से बहुत दूर नहीं हैं, जिसका अधिकार पाना शांति तथा अमरत्व को प्राप्त करना है।

पवित्र ईश्वरीय प्रेम मानवी प्रेम से इसी बात में भिन्न है कि वह

पक्षपात-रहित होता है; और ईश्वरीय प्रेम की यह एक बड़ी भारी प्रधान विशेषता है। । मानवी प्रेम शेष सब बातों को छोड़कर किसी एक विशेष बात से होता है; और जिस समय वह विशेष बात दूर हो जाती है, उस समय प्रेमी का मरण हो जाता है । उसकी पीड़ाएँ अनंत और असह्य होती हैं। ईश्वरीय प्रेम सारे विश्व को छाती से लगाता है और वह किसी विशेष विषय से नहीं होता, बल्कि सारा संसार—विश्व-भर—उसका पात्र होता है । अपने मानवी प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि और पवित्रीकरण के उपरांत जब मनुष्य इस प्रेमावस्था को प्राप्त होता है, तब मानवी प्रेम से समस्त अपवित्र तथा स्वार्थमय अंश दूर होकर नष्ट हो जाता है, और कोई वेदना शेष नहीं रह जाती। चूँकि मानवी प्रेम का वृत्त संकीर्ण और बँधा होता है और उसमें स्वार्थ का मिश्रण होता है, इसलिये उसके कारण दुःख भोगना पड़ता है । जो प्रेम इतना पवित्र हो कि वह अपने लिये कुछ भी न चाहता हो, उसके कारण कोई वेदना नहीं हो सकती। परंतु तब भी अलौकिक प्रेम तक पहुँचने के लिये मानवी प्रेम की परमावश्यकता है; और जब तक किसी आत्मा में गहरे-से-गहरे तथा अत्यंत ही शक्तिशाली मानवी प्रेम की पात्रता नहीं आ जाती, तब तक उसमें दिव्य प्रेम की भी योग्यता नहीं हो सकती। केवल मानवी प्रेम और कठिनाइयों में होकर अग्रसर होने से ही मनुष्य ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त और अनुभव कर सकता है ।

सारा मानवी प्रेम अनित्य होता है । उसकी ठीक वही दशा है, जो उसके पात्र की दशा होती है । परंतु एक ऐसा भी प्रेम है, जो नित्य है और केवल दिखावटी बातों में नहीं फँसता ।

मनुष्य जितना ही एक से घृणा करता है, उतना ही वह दूसरे से प्रेम कर सकता है । परंतु एक ऐसा भी प्रेम है, जिसका प्रतिघातक और प्रतिद्वंद्वी नहीं होता। वह स्वार्थ की हरएक छाया से मुक्त और

नितांत पवित्र होता है। उसकी सुगंध प्रत्येक मनुष्य तथा प्राणी तक एकसाँ पहुँचती है।

मानवी प्रेम ईश्वरीय प्रेम की छाया मात्र है। यह आत्मा को वास्तविक अवस्था तक खींचता है—उस प्रेम तक, जिसमें परिवर्तन और चिंता का होना कोई जानता ही नहीं।

यह ठीक है कि माता उस मांस के लोथड़े को, जो उसकी गोद में पड़ा है, पूर्ण उत्साहमय प्रेम से देखे, और जब कभी कोई उस बालक को पृथ्वी पर लिटा दे, तो उसको देखकर उस माता के ऊपर दुःख का समुद्र-सा उमड़ पड़े। यह ठीक है कि उसकी आँखों से अश्रु-धारा बहने लग जाय और उसके हृदय में असह्य वेदना हो उठे; क्योंकि इसी तरह से तो भोग-विषय तथा प्रसन्नता की स्थायी प्रकृति का उसको ज्ञान होगा और वह नित्य तथा अविनाशी वास्तविक वस्तु के निकट खींचकर पहुँचाई जा सकेगी।

यह ठीक है कि दृष्टिगोचर होनेवाले प्रेम-पात्र के छीन लिए जाने पर प्रेमी भाई, बहन, पति और स्त्री को गहरी वेदना पहुँचे, ताकि वे सबकी जड़, जो अदृश्य भगवान् है, उससे भी प्रेम करना सीखें। क्योंकि केवल उसी स्थान पर स्थायी संतोष की प्राप्ति संभव है।

यह ठीक है कि घमंडी, ऐश्वर्य-भक्त तथा स्वार्थ-प्रेमी को पराजित होना पड़े, ताकि वह पीड़ा को जलानेवाली अग्नि को पार तो करे; क्योंकि हठी आत्मा इसी तरह से जीवन की प्रहेलिका पर विचार करने के लिये विवश की जा सकती है। हृदय को पवित्र और कोमल बनाने का यही मार्ग है, और सत्य ग्रहण करने के लिये हृदय इसी तरह से तैयार किया जा सकता है।

जब मानवी प्रेमवाले हृदय में दुःख का डंक प्रवेश करता है, जब मैत्री और विश्वास की भावना रखनेवालों पर अंधकार, निर्जनता

और त्याग का बादल मँडराने लगता है, तभी हृदय त्राहि-त्राहि करता हुआ अविनाशी से प्रेम करने के लिये अपना सांसारिक मार्ग छोड़कर आता है, और उसकी छिपी शांति में विश्राम पाता है। जो कोई इस प्रेम की शरण में आता है, उसको कोई असुविधा नहीं रह जाती। न तो उसको दुःख भोगना पड़ता है और न मुर्दापन ही उसको घेरे खड़ा रहता है। परीक्षा के दु:खदायी समय में भी लोग उसका साथ नहीं छोड़ते।

शोक से पवित्र किए गए हृदय में ही पवित्र प्रेम के सौंदर्य का अनुभव हो सकता है, और स्वर्गावस्था की मूर्ति केवल उसी वक़्त देखी और प्राप्त की जा सकती है, जब कि इस अज्ञानता और स्वार्थ को, जिसमें न तो कोई जीवन है, न रूप है, काटकर निकाल दिया जाय। केवल वही प्रेम, जो आत्मीय तुष्टि, और पुरस्कार नहीं चाहता, भेद-भाव पैदा नहीं करता और जिसके बाद हार्दिक वेदना शेष नहीं रह जाती, ईश्वरीय कहा जा सकता है।

बुराइयों की दु:खदायी छाया और स्वार्थ में पड़े हुए लोग प्रायः यह सोचा करते हैं कि पवित्र प्रेम तो उस ईश्वर की विभूति है, जिस तक हमारी पहुँच ही नहीं। इस पवित्र प्रेम को वे अपने से परे और ऐसा कुछ समझते हैं, जिसको वे कभी प्राप्त नहीं कर सकते। सच है, ईश्वर का प्रेम सदैव स्वार्थी मनुष्यों की पहुँच के बाहर है। परंतु जिस वक़्त हृदय और मस्तिष्क को स्वार्थ-परता के इन विचारों से रिक्त कर दिया जाय, उस वक़्त यह निस्स्वार्थ प्रेम, यह प्रधान प्रेम या सच्चिदानद, अर्थात् ईश्वर का प्रेम अपने अंतःकरण का एक स्थायी और वास्तविक पदार्थ बन जाता है।

अंतःकरण के अदर इस पवित्र प्रेम का अनुभव करना उस भगवान् से प्रेम करने के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं। लोग ईश्वरीय प्रेम के बारे में इतनी बकवाद तो अवश्य करते हैं, परंतु उसको सम-

करते कम हैं । यह प्रेम केवल पापों से हमारी रक्षा ही नहीं करता, बल्कि यह तमाम प्रलोभनों से भी हमको परे ले जाता है।

परंतु कैसे कोई यह उच्च अनुभव प्राप्त कर सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर सत्य ने बराबर यही दिया है और यही देता रहेगा कि अपने को खाली करो और मैं तुमको भर दूँगा । जब तक अपनापन नहीं जाता, तब तक पवित्र प्रेम जाना ही नहीं जा सकता; क्योंकि प्रेम को छोड़ना ही या प्रेम का दमन करना ही अपना स्वार्थ है । और जिस बात को हम जानते हैं, उससे इनकार कैसे किया जा सकता है ? आत्म की क़ब्र पर से जब तक स्वार्थ का पत्थर हटा नहीं दिया जाता, तब तक अमर ईसा मसीह (प्रेम की पवित्र मूर्ति) जो अब तक गड़े और मृतक पड़े हैं, अज्ञानता की छाप को अलग कर, पुनरुज्जीवन की चमकती चकाचौंध करनेवाली मूर्ति नहीं धारण कर सकते ।

आपका विश्वास है कि नज़ारेथ (Nazareth) के ईसा मसीह मार डाले गए थे और फिर उठ खड़े हुए। मेरा यह कहना नहीं है कि आपका यह विश्वास भ्रांत है। परंतु अगर आप यह विश्वास करने से इनकार करते हैं कि स्वार्थमय इच्छाओं की सूली (Cross) पर प्रेम के पवित्र भाव का लगातार दमन हो रहा है, तो मैं कहूँगा कि ऐसा अविश्वास कर आप भूल करते हैं और अब तक आपने बहुत दूर से भी ईसा मसीह (ईश्वर) के प्रेम का दर्शन नहीं पाया है।

आपका कथन है कि ईसा मसीह से प्रेम करके आपने मुक्ति का स्वाद चख लिया है । क्या आप बुरी भावना, चिड़चिड़ापन, अहंकार, व्यक्तिगत घृणा और अपने से दूसरों का निर्णय करने तथा दूसरों को तुच्छ समझने के स्वभाव से मुक्त हैं ? यदि ऐसी बात नहीं है, तो किस बात से आपने अपने को बचाया है और किस बात में आपने ईसा मसीह के परिवर्तन करानेवाले प्रेम का अनुभव किया है ?

जिस किसी ने इस पवित्र प्रेम का अनुभव कर लिया है, वह एक नवीन

प्राणी बन गया है। फिर स्वार्थपरता के प्राचीन विचार उस पर अपना सिक्का जमाकर जिस तरह चाहें, उसकी नकेल नहीं घुमा सकते। अब तो वह अपने धैर्य, पवित्रता, आत्मशासन और हृदय की गहरी दया तथा एक रंग रहनेवाली मधुरता के लिये विख्यात और जगत्-प्रसिद्ध हो रहा है।

पवित्र निस्पृह प्रेम केवल एक राग या मनोवेग नहीं। यह ज्ञान की एक ऐसी अवस्था है, जिसके कारण बुराइयों का साम्राज्य नष्ट हो जाता है और बुरी बातों में से विश्वास हट जाता है। सच्चिदानंद का सुखदायी अनुभव कर आत्मा उत्कृष्ट और परिमार्जित हो जाती है। दिव्य बुद्धिवाले के लिये प्रेम और ज्ञान एक ही अभिन्न वस्तु है।

तमाम संसार इसी पवित्र प्रेम के अनुभव की ओर बढ़ रहा है। इसी अभिप्राय से विश्व की सृष्टि हुई थी; और जितनी बार सुख का अनुभव होगा, और विषय, विचारों तथा आदर्शों पर आत्मा की जितनी ही पहुँच होगी, उतना ही इस पवित्र प्रेमानुभव के लिये उद्योग होगा। परंतु इस समय संसार केवल भागती हुई छाया को पकड़ने का उद्योग कर रहा है और अंधकार में होने के कारण असली वस्तु की उपेक्षा करता है, इसलिये उसको इस प्रेम का अनुभव नहीं होता। इसी कारण दुःख, शोक तथा विषाद अब भी बना है, और उस समय तक बना रहेगा, जब तक अपने ऊपर स्वयं लाई हुई आपत्तियों से शिक्षा लेकर संसार उस निस्पृह प्रेम और बुद्धि का पता नहीं लगा लेता, जो शांतिमय और शांत है।

जो कोई स्वार्थ त्यागने के लिये राज़ी और तत्पर हो, वह इस प्रेम, इस बुद्धि, इस शांति और हृदय तथा मस्तिष्क की इस स्थिर अवस्था का अनुभव कर सकता है। साथ-ही-साथ उसको इन बातों को झेलने और भोगने के लिये भी तैयार होना चाहिए, जो इस त्याग के कारण अपने ऊपर आनेवाली हैं। संसार में क्या, समस्त विश्व में कोई स्वेच्छाचारी शक्ति नहीं और भाग्य की सबसे दृढ़ ज़ंजीरें, जिनसे

मनुष्य बँधा हुआ है, स्वयं उसी की बनाई हुई हैं। मनुष्य दुःखदायी बंधन में इस कारण फँसा रहता है कि उसमें फँसा रहना ही पसंद करता है; क्योंकि वह अपनी जंजीरों से प्रेम करता है और सोचता है कि उसका जो छोटा-सा आत्महित का कारावास है, वह सुंदर, रमणीय और सुखदायी है। उसको डर है कि उस कारावास से मुक्त होते ही मैं तमाम असली और रखने लायक़ बातों से महरूम कर दिया जाऊँगा।

"आप अपने कारण दुःख भोगते हैं; इसके लिये दूसरा कोई आपको विवश नहीं करता। आपके जीवन और मरण के लिये दूसरा कोई उत्तरदायी नहीं।"

जिस भीतरी शक्ति ने इन जंजीरों को और इस अंधकारमय संकीर्ण क़ैदख़ाने को बनाया है, वह जब चाहे और चेष्टा करे, तब अलग हो सकती है, और जिस वक़्त आत्मा को इस कारावास की अनुपयोगिता का पता चल जायगा और जिस वक़्त दीर्घ दुःखावस्था उसको अपरिमित प्रेम तथा प्रकाश के गृहणार्थ उद्यत तथा तैयार कर देगी, उस वक़्त आत्मा इसके लिये चिल्लाहट मचाने लगेगी।

जिस तरह से रूप होने पर छाया होती है, अग्नि जलने पर धुआँ निकलता है, उसी तरह से कारण उपस्थित होने पर कार्य होता है और सुख तथा दुःख मनुष्यों के विचारों और कर्तव्यों के बाद ही फल-स्वरूप प्राप्त होता है। संसार में अपने चारो ओर देखिए, तो कोई ऐसा काम न होगा, जिसका कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कारण न हो और वह कार्य भी ठीक सोलहो आने न्यायानुमोदित न हो। मनुष्यों को अगर दुःख भोगना पड़ता है, तो इसका कारण केवल इतना ही है कि निकट या सुदूर भूतकाल में उन्होंने बुराइयों का बीज बोया था। वे सुख को भी उसी वक़्त प्राप्त होते हैं, जब कि वे अच्छे कार्यों को पहले कर लेते हैं। मनुष्य को एक बार इस पर विचार करने दीजिए, इसको

समझने दीजिए। फिर वह बराबर अच्छे कार्य करेगा, और अपने हृदयोद्यान में अंकुरित तमाम घास-फूस और लतरी को जला देगा।

संसार निस्स्वार्थ प्रेम को नहीं समझ पाता; क्योंकि वह अपनी ही प्रसन्नता के पीछे परेशान रहता है—अस्थायी स्वार्थों की संकीर्ण चहारदीवारियों के अंदर जकड़ा करता है। इसका प्रधान कारण केवल यही है कि वह अपनी अज्ञानता के कारण इन्हीं स्वार्थ और प्रसन्नता की बातों को असली स्थायी वस्तु समझे हुए है। संसारी प्रलोभनों में फँस जाने से तथा दुःख से जलने के कारण उसको सत्य का पवित्र तथा शांत सौंदर्य दिखलाई नहीं पड़ता। त्रुटियों और भ्रम की तुच्छ भूसियाँ ही उसका आहार हैं और वह सर्वद्रष्टा के प्रेम प्रासाद (भवन) से बराबर विलग रहता है। वहाँ तक उसकी पहुँच ही नहीं होती।

इस प्रेम से अनभिज्ञ और वंचित रहने के कारण मनुष्य ऐसे असंख्य सुधार करना चाहता है, जिनमें भीतरी त्याग का नाम भी नहीं होता; और हरएक आदमी यही सोचता है कि मेरे सुधारों से संसार सदैव के लिये सुधर जायगा। परंतु असल बात तो यह है कि इस काम में लगकर अपने ही हृदय में वह बुराइयों का बीज बोता है। केवल वही सुधार कहा जा सकता है, जो मनुष्य के हृदय को सुधारने का यत्न करता हो; क्योंकि हरएक बुराई उसी जगह से पैदा होती है। जब तक संसार स्वार्थ तथा दंगे-फसाद को तिलांजलि देकर पवित्र प्रेम का पाठ नहीं पढ़ लेता, तब तक उसमें सर्वव्यापी आनंद और सुख का सतयुग नहीं आ सकता।

धनाढ्यों का गरीबों से घृणा करना और गरीबों का अमीरों को तुच्छ समझना बंद हो जाने दीजिए; लोभी को त्याग और कामातुर को पवित्रता का पाठ सीखने दीजिए; दलबंदी करनेवालों से झगड़ा-फसाद छुड़वा दीजिए; अनुदार हृदयवालों को क्षमा का पाठ सीखने दीजिए; द्वेषियों को दूसरों के साथ सुख मनाना और झूठी शिकायत

करनेवालों को अपने आचरण पर लज्जित होना सिखला दीजिए। अगर सभी स्त्री-पुरुष इसी मार्ग पर चलने लगें, तो फिर क्या पूछना है। वह सतयुग का समय बिलकुल ही निकट हो जाय। इसलिये जो अपने हृदय को पवित्र बनाता है, वही दुनिया का सबसे अधिक परोपकार करनेवाला है।

परंतु तब भी यद्यपि संसार उस स्वर्गीय ज़माने से, जिसमें मनुष्य निस्स्वार्थ प्रेम तक पहुँच जायगा, इस वक्त वंचित है और कई आगामी युगों तक वंचित रहेगा, तथापि यदि आपको ऐसा करना अभीष्ट है, तो आप अपने स्वार्थमय जगत को छोड़कर इसी वक्त इस सुखदायी भूमि में प्रवेश कर सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रवेश होने के पूर्व आपको घृणा, भ्रमधारणा और दूसरों को तुच्छ समझने की आदत छोड़कर सभ्य और क्षमाशील प्रेम की शरण अवश्य लेनी पड़ेगी। जहाँ पर घृणा, धर्मांध और दूसरों को बुरा समझने की बात है, वहाँ पर निस्स्वार्थ प्रेम नहीं टिकता। ऐसा प्रेम तो केवल उस हृदय में निवास करता है, जिसने समस्त शिकायतों को छोड़ दिया है। आपका कहना है कि भला मैं शराबियों, ढोंगियों, जल्लादों और छिपकर आघात करनेवालों से कैसे प्रेम कर सकता हूँ। मैं तो उनको अनादर और उनसे घृणा करने के लिये विवश हूँ। यह ठीक है कि आपका हृदय ऐसे लोगों को पसंद करने के लिये आप पर ज़ोर न दे। परंतु जिस वक्त आप यह कहते हैं कि हम तो उनको घृणा की दृष्टि से देखने के लिये विवश हैं, उस वक्त आप स्पष्ट कर देते हैं कि आप प्रेम के प्रधान नियम से परिचित नहीं। क्योंकि यह संभव है कि आप उस संस्कृत चित्तावस्था को प्राप्त हो जायँ, जिसकी प्राप्ति के बाद आपको यह पता चल सके कि इन लोगों की इस दशा के कितने कारण हैं, और वे इस घोर दुःख के भागी क्यों हैं, इसके अतिरिक्त तभी वक्त आपको पता चलेगा कि अंत में उनका पवित्र होना

निश्चित है। इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर उनको दोषी ठहराना या उनसे विमुख रहना आपके लिये असंभव हो जायगा और आप सदैव पूर्ण शांति और गहरी दया के साथ उनके बारे में विचार करेंगे।

अगर आप लोगों से प्रेम करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं, परंतु ज्यों ही वह आपके किसी काम में बाधा पहुँचाते हैं या कोई ऐसा काम करते हैं, जो आपको पसंद नहीं, अगर उस वक्त आप उनकी निंदा करने लगें और उनको पसंद न करें, तो इसका यही मतलब है कि आप ईश्वरीय प्रेम को अपना सिद्धांत नहीं मानते। अगर अपने हृदय में आप लगातार दूसरों को दोषी और कुत्सित ठहराया करते हैं, तो स्वार्थ-रहित प्रेम आपमे बिलकुल छिपा है। जो जानता है कि प्रेम ही सब वस्तुओं का प्रधान कारण है और जिसको प्रेम की शक्ति का पूर्णता और पर्याप्त अनुभव हो गया है, उसके हृदय में घृणा के लिये स्थान नहीं हो सकता।

जिनको इस प्रेम का ज्ञान नहीं, वे अपने भाइयों के ही न्यायाधीश और फाँसी देनेवाले बन जाते हैं। वे इस बात को भूल जाते हैं कि कोई एक स्थायी न्यायाधीश और फाँसी देनेवाला भी है; और जिस सीमा तक कोई उनकी राय और विशेष सुधारों तथा कार्य-विधियों से मतभेद रखता है, वे उतना ही उसको सनकी, उद्दंड, बेईमान, विवेक-हीन और कपटी समझते हैं। जिस सीमा तक लोग लगभग उनके ही उद्देश्यों पर चलते हैं, वहाँ तक तो वे उनको अत्यंत प्रशंसनीय समझते हैं। अपने मन ही में मग्न रहनेवाले लोगों की यही दशा होती है। परंतु जिसका हृदय ईश्वरीय प्रेम में लगा है, वह मनुष्यों के ऊपर न तो ऐसी छाप ही लगाता है, न उनका विभाग ही इस तौर पर करता है। न तो वह लोगों को अपने मत पर लाने की कोशिश ही करता है और न यही यत्न करता है कि लोगों से अपने तरीक़ों की प्रधानता को क़बूल करने के लिये हठ करे। प्रेम-नियम

को प्राप्त आने पर वह उसी के सहारे पर चलता है और सबके प्रति अपने मस्तिष्क को एक-सा शांत और हृदय को एक-सा प्रेममय रखता है। पापी, पुण्यात्मा, बुद्धिमान्, मूर्ख, विद्वान्, विद्याहीन, स्वार्थी, निस्स्वार्थी सभी के लिये वह उपकार का एक-सा विचार रखता है।

अपने ऊपर विजय-पर-विजय प्राप्त करने और अपने को सुव्यवस्थित बनाने में निरंतर संलग्न रहने से ही मनुष्य इस प्रधान ज्ञान और पवित्र प्रेम को पा सकता है। केवल पवित्र हृदयवालों को ही परमात्मा के दर्शन होते हैं। जिस वक़्त आपका हृदय काफ़ी पाक हो जायगा, उस वक़्त आपका कायापलट हो जायगा और जिस प्रेम का कभी अंत नहीं होता, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, और जिसका फल कभी शोक-विषाद नहीं होता, वही प्रेम आपके अंदर जाग्रत् हो जायगा, और आपमें शांति आ जायगी।

पवित्र प्रेम प्राप्त करने के लिये उद्योग करनेवाला सदैव लानत-मलामत के भाव को अपने वश में करना चाहता है; क्योंकि जहाँ पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान है, वहाँ कलंक-भावना ठहर ही नहीं सकती। और जिस हृदय में दूसरों को व्यर्थ तुच्छ समझने की योग्यता नहीं रह गई, उसी हृदय में प्रेम का पूर्ण अनुभव और विकास होता है।

ईसाई नास्तिकों को गाली देते हैं और नास्तिक ईसाइयों पर व्यंग्य-पूर्वक हँसते हैं। रोमिय धर्मानुयायी (Catholics) और रोमिय धर्म के विरुद्ध दलवाले (Protestants) लगातार आपस में वाग्युद्ध किया करते हैं। जिस स्थान पर प्रेम तथा शांति का भाव होना चाहिए था, वहाँ घृणा और झगड़े को स्थान मिल रहा है।

जो अपने भाई से घृणा करता है, वह जल्लाद है और पवित्र ईश्वरीय प्रेम का घातक है। जब तक आप प्रत्येक धर्म के अनुयायियों और नास्तिकों को भी निष्पक्ष भाव से नहीं देखेंगे, उनसे घृणा करना व क्रोध देंगे और पूर्ण शांति से न रहेंगे, तब तक आपको बराबर उस प्रेम

अंतःकरण की यह चट्टान बड़ी ही अहंकारमय है। उसी वक़् मुझको इस बात का भी ज्ञान हुआ कि अंत में तमाम बाधाओं को नष्ट होना पड़ेगा और प्रेम की धारा के सामने प्रत्येक हृदय को झुकना पड़ेगा।

पाँचवाँ अध्याय

अनंत में लीन होना

प्रारंभ काल से ही शारीरिक लालसाओं तथा कामनाओं और सांसारिक अनित्य वस्तुओं में लीन होने पर भी मनुष्य को अपने भौतिक जीवन के परिमित, अनित्य और भ्रांत स्वभाव का सहज ज्ञान रहा है; और जब कभी उस पर बुद्धि तथा शांति का प्रकाश होता रहा है, तो वह सदैव अनंत तक पहुँचने की कोशिश करता आया है। प्रायः वह आँखों में लबालब आँसू भरकर नित्य हृदय (परमात्मा) की शांति-दायिनी वास्तविकता की अभाकांक्षा करता देखा गया है।

जिस समय वह स्वयं विचार करता है कि ये सांसारिक सुख वास्तविक और संतोष-जनक हैं, वेदना और शोक उसको बराबर इस बात की याद दिलाते हैं कि ये सब अनित्य और असत्य ही नहीं हैं, बल्कि असंतोष की खान भी हैं। वह भौतिक वस्तुओं से पूर्ण संतोष प्राप्त करने का विश्वास करना चाहता है। लेकिन उसी वक्त उसके अंतःकरण में प्रतिरोध की एक आवाज़ आती है कि ऐसा विश्वास ठीक नहीं; क्योंकि यह तो अपने आवश्यक नित्य स्वभाव को ही तुरत दूर किए देता है और एक नित्य तथा स्थायी सबूत इस बात के अनुकूल हुआ जाता है कि स्थायी संतोष और अटूट शांति का अनुभव केवल अमर, शाश्वत और अनंत ब्रह्म में ही किया जा सकता है।

यही सबके लिये विश्वास का एक-सा कारण है, यही सब धर्मों की जड़ और खान है, यही भ्रातृ-भाव और प्रेम-पूर्ण हृदय का

मूल प्राण है कि वास्तव में मनुष्य, यदि आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय, तो नित्य और ईश्वर का अंश है। परंतु संसार में पड़कर और अशांति से दु.खित होकर वह लगातार अपनी असली प्रकृति को जानने के लिये यत्नशील रहता है।

मनुष्य की आत्मा अनंत भगवान् से पृथक् नहीं हो सकती और उस अनंत के बिना किसी वस्तु से उसे संतोष भी नहीं हो सकता। दुःख का भार लगातार उसके दिल को दुखाता ही जायगा, और शोक की छाया बराबर उसके मार्ग को अंधकारमय बनाती ही जायगी। लेकिन यह सब उसी वक्त तक होगा, जब तक वह भौतिक स्वप्नमय जगत् में चक्कर लगाना छोड़कर नित्य की वास्तविकता को पूर्णतः जान नहीं जाता।

जिस तरह से महासागर से पृथक् की हुई पानी की हरएक छोटी-से-छोटी बूँद में भी महासागर के तमाम असली गुण वर्तमान रहते हैं, उसी तरह से अनंत से पृथक् हुआ प्राणी भी जब ज्ञानावस्था में आता है, तो उसमें अनंत का पूरा सादृश्य विद्यमान हो जाता है। इसके अतिरिक्त जिस तरह से प्राकृतिक नियमों के द्वारा अंत में वह पानी की बूँद फिर महासागर में पहुँच जायगी और उसी के शांत गर्भ में लुप्त हो जायगी, उसी तरह से इन अभ्रांत प्राकृतिक नियमों के द्वारा मनुष्य भी अपने स्थान को पहुँच जायगा और अनंत महासागर में लुप्त हो जायगा।

अनंत में ही पुनः एकमय हो जाना मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है। नित्य नियम में पूर्णत प्रवेश करना क्या है, बुद्धि, प्रेम तथा शांति का उपार्जन करना है। परंतु यह पवित्र अवस्था अपने ही स्वार्थ में लीन रहनेवालों के लिये न तो कभी सुलभ हुई है, न होगी। अपनापन, पृथक्ता, स्वार्थ-परता ये सब एक ही हैं और बुद्धि तथा ईश्वरीय पवित्रता की प्रतिद्वंद्वी हैं। बिना शर्त के

अपने को भुला देने से पृथक्ता और स्वार्थ-परता का नाश होता है और मनुष्य अमरत्व तथा अनंत के पवित्र पद का अधिकारी बन जाता है।

इस प्रकार अपने व्यक्तित्व को भुला देना संसार की तथा स्वार्थी मनुष्यों की निगाह में अपने ऊपर सबसे दुःखदायी विपत्ति को बुलाना है; और यह एक ऐसी हानि उठाना है, जिसकी पुनः पूर्ति भी नहीं हो सकती। परंतु तब भी यही एक सर्वोपरि प्रधान तथा अतुल ईश्वरीय प्रसाद है, यही वास्तविक और स्थायी लाभ है। जिस मनुष्य को जीवन के गुह्य नियमों और अपने ही जीवन की प्रकृति का ज्ञान नहीं, वह बराबर अनित्य तथा विकारमय जगत् में भटका करता है। परंतु ये ऐसी चीज़ें हैं, जिनमें स्थायी तत्त्व नहीं। इस प्रकार लीन हो जाने का परिणाम यह होता है कि अपने ही भ्रम के समुद्र में डूब-कर मनुष्य कम-से-कम उस समय तो अपना जीवन गँवा ही देता है।

मनुष्य अपने शरीर पर ही लट्टू होकर उसकी प्रेरणाओं को पूरा करता है, मानो वह अमर होकर आई है; और यद्यपि वह शरीर-पात की अनिवार्यता तथा नैकट्य को भुला देने की चेष्टा करता है, परंतु मृत्यु का भय और अपनी प्रिय वस्तुओं से हाथ धोने की आशंका का बादल उसके सुख में भी सुख के समय को घेरे रहता है और उसकी स्वार्थ परता को सर्द कर देनेवाली छाया निर्दय भूत की तरह उसका पीछा ही नहीं छोड़ती।

दैहिक सुख तथा भोग-विलास की सामग्री इकट्ठा हो जाने पर मनुष्य के अंदर की ईश्वरीय सत्ता शराबी की तरह शिथिल पड़ जाती है और मनुष्य बराबर भौतिकता की खाई में गहरे नीचे धँसता जाता है। यह खाई क्या है? इंद्रियों का नश्वर जगत्। पर्याप्त बुद्धि होने पर शारीरिक अमरता के विषय में जो सिद्धांत (Theories) हैं, वे ही निर्भ्रांत सत्य समझे जाने लगते हैं। जिस समय मनुष्य की बुद्धि पर स्वार्थ परता का किसी क़िस्म का या हरएक क़िस्म का बादल

आ जाता है, उस समय वह आध्यात्मिक विवेक-शक्ति खो बैठता है। उसको क्षणिक और नित्य, नश्वर और अविनश्वर, मृत्यु तथा अमरता, सत्य और असत्य में भ्रम होने लगता है। इसी तरह से संसार में इतने भिन्न विचारों और कल्पनाओं की भरमार हो गई, यद्यपि मानवी अनुभव में उनके लिये कोई आधार नहीं।

जन्म-दिवस से ही मनुष्य के अंदर उसके विनाश की सामग्री वर्तमान होती है और अपनी ही प्रकृति के अनिवार्य नियम के अनुसार उसका नाश भी होता है।

विश्व में अनित्य कभी नित्य नहीं हो सकता; जो स्थायी है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकता; नश्वर कभी अमर नहीं हो सकता; और जो अमर है, वह कभी मर नहीं सकता। ऐहिक पदार्थ नित्य नहीं हो सकते और नित्य क्षणिक भी नहीं हो सकता। जो विकार है, वह कभी मूल पदार्थ नहीं हो सकता; और जो असल चीज़ है, वह कभी मुर्झाकर भी विकार नहीं हो सकती। सत्य कभी असत्य नहीं हो सकता और असत्य कभी सत्य नहीं हो सकता। मनुष्य काया को अमर नहीं बना सकता; परंतु शारीरिक वासनाओं पर विजय प्राप्त करके उसकी समस्त प्रवृत्तियों को त्यागकर वह अमरत्व के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। केवल ईश्वर ही अमर है और केवल ईश्वरीय चेतन-अवस्था का अनुभव कर लेना ही अमरत्व में प्रवेश पाना है।

प्रकृति के जो ये तमाम असंख्य रूप हैं, सभी परिवर्तनशील, नश्वर और क्षण-भंगुर हैं, प्रकृति की केवल अवस्था ही अचल है। प्रकृति तो अनेक प्रकार की होती है और पृथक्ता ही उसकी पहचान है। अवस्था केवल एक है और एकता ही उसका चिह्न है। अंतःकरण की स्वार्थ-परता और इंद्रियों का दमन करके ही जो प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है, वह मनुष्य व्यक्तित्व और भ्रम के जंजाल से मुक्ति पाता है और निर्गुण के चकाचौंध करनेवाले प्रकाश का अनुभव करता है।

यही विश्वव्यापी सत्य-धर्म है; परंतु इसी से विनाशकारी रूपों का भी आविर्भाव होता है।

इसलिये मनुष्य को स्वार्थ-त्यागी बनने का अभ्यास करने दीजिए और अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को उसे जीतने दीजिए। सुख तथा भोग-विलास का गुलाम बनने से उसको इनकार करने दीजिए। उसको सद्गुणों का आदी बनाइए और प्रतिदिन उसमें सद्गुणों की वृद्धि करने दीजिए, ताकि वह अंत में पवित्रता को प्राप्त हो जाय और उसमें नम्रता, भलमनसाहत, क्षमा, दया और प्रेम का अभ्यास और ग्रहण-शक्ति आ जाय; क्योंकि इसी अभ्यास और ग्रहण-शक्ति से पवित्रता का आविर्भाव होता है। ये ही पवित्रता के घटक हैं।

सद्भावना से दिव्य दृष्टि मिलती है। जिस मनुष्य ने अपने को इस तरह से अपने वश में कर लिया है कि उसमें केवल एक ही मानसिक वृत्ति शेष है और वह भी सब प्राणियों के प्रति सद्भावना की व्यक्ति है, वही दिव्य ज्ञान का अधिकारी और मालिक है। वही झूठ और सत्य का निर्णय कर सकता है। इसलिये सबसे अच्छा मनुष्य वही है, जो बुद्धिमान् है, पवित्र है, और नित्य का ज्ञाता तथा द्रष्टा है। जहाँ पर आप अभंग भलमनसाहत, अचल धैर्य, उच्च कोटि की नम्रता, भाषण की मधुरता, आत्मसंयम, आत्म-विस्मृति तथा गहरी अपरिमित सहानुभूति देखते हों, वहीं पर आपको सबसे अच्छे दिमागवालों की तलाश करनी चाहिए और ऐसे ही आदमी की संगत ढूँढ़नी चाहिए; क्योंकि उसे ईश्वरीय अनुभव हो गया है। वह अब नित्य का सहवासी तथा अनंत का मिश्रित अंश हो गया है। जो क्रोधी, अधीर तथा [illegible]भी हो, उस पर विश्वास न कीजिए। जो अपने स्वार्थों को नहीं छोड़ता और सदैव सुख की तलाश में रहता है, जिसमें सद्भावना तथा दूर तक प्रभाव डालनेवाली दया नहीं है, उसका भी विश्वास न करना चाहिए; क्योंकि ऐसे आदमियों में बुद्धि नहीं

होते। उनका तमाम ज्ञान व्यर्थ है। उनकी बातें तथा काम टिकाऊ नहीं होते; क्योंकि उनकी बुनियाद ही नश्वर पदार्थों पर है।

मनुष्य को अपना स्वार्थ छोड़ देने दीजिए, संसार पर विजय प्राप्त कर लेने दीजिए और अपने को भुला देने दीजिए। केवल इसी मार्ग का अवलंबन करके वह अनंत के हृदय में स्थान पा सकेगा।

यह संसार, यह शरीर, यह अपनापन तो केवल समय की मरु-भूमि पर मरीचिका के सदृश हैं, आध्यात्मिक निद्रावस्था की अंध-कारमय रात्रि में क्षणिक स्वप्न हैं। परंतु जिन लोगों ने इस मरुभूमि को पार कर लिया है, जिनमें आध्यात्मिक जागृति हो गई है, केवल उन्होंने विश्वव्यापी सत्य को जान लिया है; और इस सत्य का ज्ञान हो जाने पर तमाम विकार दूर हो जाता है और भ्रम तथा स्वप्न का नाश हो जाता है।

केवल एक ही महान् नियम है, जो बिना शर्त की भक्ति चाहता है; एक ही एकीकरणीय नियम है, जो तमाम विभिन्नताओं का मूल और आधार है, और एक ही सत्य है, जिसके सामने तमाम संसार के प्रश्नों को छाया की तरह भागना पड़ता है। इस नियम, इस एकता और इस सत्य को जानना अनंत में लीन होना है और उसका तद्रूप बनना है।

प्रेम के महान् नियम में ही अपने जीवन को केंद्रस्थ करना शांति, विश्राम और एकता में प्रवेश करना है। बुराई तथा घृणा की बातों में पड़ने से अपने आपको एकदम बचाना, बुराइयों को रोकने का पूरा-पूरा उद्योग करना, भली बातों को न छोड़ना और अंतःकरण को शक्तिदायक अवस्था के अनुकूल बिना ज़बान हिलाए चलना, वस्तुओं के सबसे गूढ़ तत्त्व को जानना है और उस नित्य तथा अनंत नियम को वास्तव में जानना है, जिसका केवल विषय-ग्राही बुद्धि के लिये पता चलाना दुस्तर है। वह बराबर आपसे गुप्त

और आपकी नज़रों से दूर होगा। जब तक आप इस सिद्धांत का अनुभव नहीं कर लेते, तब तक आपकी आत्मा को शांति नहीं मिल सकती। जिसको इन बातों का अनुभव हो जाय, वही असल में बुद्धिमान् है। उसकी बुद्धिमत्ता इस बात में नहीं है कि वह बड़ा ही विद्वान् है, बल्कि उसकी बुद्धिमानी इस बात में है कि उसका हृदय निर्दोष और जीवन पवित्र है।

अनंत और नित्य का अनुभव करना अपने को काल, संसार और काया से परे ले जाना है; क्योंकि ये ही तीन अंधकार (अज्ञानता) साम्राज्य के घटक हैं। इस अनंत अविनाशी का अनुभव होते ही हम अमर, स्वर्गाधिकारी और उस आत्मा के अधिपति बन जाते हैं, जिसके कारण प्रकाश-साम्राज्य का संघटन और स्थापन हुआ है। अनंत में प्रवेश करना केवल एक कल्पना या मनोभावना ही नहीं है। यह एक महान् अनुभव है, जो अंतःकरण की शुद्धि के लिये कठिन प्रयत्न करने पर ही प्राप्त होता है। जब यह विश्वास हो जाता है कि सुदृढ़ावस्था में भी यह काया वास्तव में मनुष्य नहीं, जिस समय भूख-प्यास और सारी वासनाओं पर अपना पूरा अधिकार हो जाता है और वे पवित्र हो जाती हैं, जिस समय समस्त मनोवेग शांत और स्थिर हो जाते हैं, जिस समय बुद्धि का इधर-उधर भटकना छूट जाता है और पूर्ण शांति स्थापित हो जाती है, उसी समय (और उससे पूर्व नहीं) यह चेतना ईश्वर में लीन हो सकती है। इससे पूर्व हममें उस निष्कलंक पवित्र बुद्धि और पूर्ण शांत्यवस्था की जागृति नहीं होती।

जीवन के गूढ़ प्रश्नों पर विचार करते-करते ही मनुष्य वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता और थक जाता है। अंत में वह इस जगत् को छोड़कर चल देता है, परंतु वे प्रश्न बिना हल हुए ही रह जाते हैं, क्योंकि अपने संकीर्ण वृत्त में वह इतना लीन हो जाता है कि अपने

से बाहर निकलकर वह अज्ञानावस्था के पार नहीं देख सकता। अपनी काया की रक्षा में ही मनुष्य अपने सत्य जीवन को खो बैठता है। नश्वर वस्तुओं में ही लीन होकर वह नित्य के ज्ञान से वंचित रहता है।

आत्मत्याग से सारी कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। संसार में कोई ऐसी त्रुटि नहीं, जिसको अंतःकरण की त्यागाग्नि भूसी की तरह न जला सकती हो। कोई ऐसा प्रश्न ही नहीं, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, जो स्वार्थ-त्याग के प्रकाश के सामने छाया की भाँति लुप्त न हो जाता हो। केवल स्वयं भ्रम की अवस्था उत्पन्न कर लेने से झगड़े खड़े हो जाते हैं। परंतु स्वार्थ-त्याग होते ही उनका भी नाश हो जाता है। ख़ुदी (स्वार्थ परता) तो असत्य का पर्याय है। जटिलता के अगाध अंधकार-सागर में ही त्रुटि होती है। सतत सरलता सत्य की विभूति है।

केवल ख़ुदी से प्रेम करना सत्यता से पृथक् रहने का कारण होता है; और केवल अपने ही सुख का ख़याल करने से जो उससे और भी पवित्र, स्थायी और गहरे परमानंद की अवस्था है, मनुष्य हाथ धो बैठता है। कारलाइल का कहना है—"मनुष्य में अपने ही सुख के ख़याल से भी कोई उच्च बात है। सुख के बिना वह जीवित रह सकता है और उसके बदले में परमानंद की अवस्था प्राप्त कर सकता है। सुख से प्रेम न कीजिए, बल्कि परमात्मा से प्रेम कीजिए। यही स्थायी शांति की अवस्था है। यहीं पर तमाम परस्पर विरोधी प्रश्न हल हो जाते हैं। इसी के अनुसार जो कोई काम करेगा और चलेगा, उसकी भलाई होगी।"

जिसने उस स्वार्थ को त्याग दिया है, जिसने अपने व्यक्तित्व को उठाकर ताक़ पर रख दिया है, उससे फिर पेचीदा बातें छूट जाती हैं और उसमें इस चरम सीमा की सादगी आ जाती है कि लोग

उसको बेवकूफ़ समझने लगते हैं, क्योंकि संसार तो भ्रम-जाल है, जिससे मनुष्य सबसे अधिक प्रेम करता है और उसी में भूखार जानवरों की तरह चिपटा रहता है। परंतु तब भी ऐसे ही मनुष्य सर्वोच्च बुद्धि का अनुभव किए हुए होते हैं और अनंत में लीन होकर शांति का अनुभव करते हैं। बिना प्रयास ही उनका काम हो जाता है, कठिनाइयाँ और हरएक प्रश्न उनके सामने द्रवीभूत-से हो जाते हैं; क्योंकि अब वह असली अवस्था को प्राप्त हो गया है। अब उसका व्यवहार परिवर्तनशील जगत् से नहीं है, बल्कि स्थायी सिद्धांतों से ही उसके कर्तव्यों का संबंध रहता है। उसमें ऐसी बुद्धि का विकास हो जाता है, जिसको युक्तिवादावस्था से उतना ही बढ़कर समझना चाहिए, जितना पाशविक भावों से ज्ञान को बढ़कर समझना चाहिए। अपनी त्रुटियों, भ्रमों, व्यक्तिगत धारणाओं तथा प्राग्धारणाओं को तिलांजलि देकर वह ईश्वरीय ज्ञानावस्था में प्रवेश कर जाता है। स्वर्ग-प्राप्ति की स्वार्थमय कामना के साथ-ही-साथ अज्ञान-वश नरक के डर का नाश कर, यहाँ तक कि स्वयं अपने जीवन का भी प्रेम छोड़कर, वह परमानंद तथा अनश्वर जीवन प्राप्त करता है। यह ऐसा जीवन है, जो अपने अमरत्व को जानता है, और मृत्यु तथा जीवन के बीच में सेतु का काम करता है। समस्त वस्तुओं का एकदम त्याग करके ही उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है और वह अनंत के हृदय में शांति का सुख भोगता है।

जिसने अहंभाव को इतना त्याग दिया है कि वह जीने-मरने दोनो में बराबर संतुष्ट रहता है, वही अनंत में लीन होने का अधिकारी है। जिसने विनाशशील स्वार्थ से अपना विश्वास हटाकर, उस महान् नियम में, उस सच्चिदानंद में अपरिमित विश्वास करना सीख लिया है, केवल वही शाश्वत सुख का भागी बनने को तैयार है।

ऐसे आदमी के लिये पछताने की कोई बात नहीं रह जाती। उसके लिये निरुत्साह और दुःख कोई चीज़ नहीं; क्योंकि जहाँ स्वार्थ-परता नहीं, वहाँ पर ये दुःख भी नहीं टिक सकते। चाहे जो कुछ हो, वह उसमें अपनी ही भलाई समझता है; क्योंकि अब वह अपने स्वार्थ का गुलाम नहीं, बल्कि परमात्मा का दास है। अब दुनिया की तबदीलियाँ उस पर असर नहीं करतीं। युद्ध का हाल या युद्ध की अफ़वाह सुनकर उसकी शांति भंग नहीं होती; और जहाँ प्रायः लोग क्रुद्ध हो जाते हैं और जोश में आकर झगड़ने के लिये उद्यत हो जाते हैं, वहाँ वह प्रेम और दया की वर्षा करता है। चाहे दिखाई पड़नेवाली बातें इस विश्वास के ख़िलाफ़ मालूम हों, परंतु तब भी उसका विश्वास यही रहता है कि संसार तरक़्क़ी कर रहा है। उसका बराबर यही ख़याल रहता है कि संसार के जितने अच्छे-बुरे काम हैं, वे सब ज्योति तथा ज्ञान के स्वर्णमयी तंतु द्वारा ईश्वरीय उन्नति के भंडार से संबद्ध हैं। संसार का रोना, हँसना, जीवन तथा अधिकार, उसकी बेवक़ूफ़ी और उद्योग, आरंभ से अंत तक उसकी सभी भलाई-बुराई उसी से संबद्ध है; और कभी वे दृष्टिगोचर होती हैं और कभी आँखों से ओझल हो जाती हैं।

जिस वक़्त ज़ोरों की आँधी आती है, उस वक़्त कोई क्रुद्ध नहीं होता; क्योंकि सभी जानते हैं कि वह तुरंत चली जायगी। इसी तरह जब आपस के झगड़े से संसार बरबाद होता दिखलाई पड़ता है, तो बुद्धिमान् लोग सत्य तथा दया की दृष्टि से यह जानकर चुप लगा जाते हैं कि यह भी जाता रहेगा; क्योंकि उनको मलूम रहता है कि इन टूटे हृदयों की बची सामग्री से ही बुद्धि का नित्य मंदिर निर्मित होगा।

अत्यंत धीर, अनंत दया के भंडार, गंभीर, शांत और पवित्र

होने की वजह से उसकी उपस्थिति ही एक बड़ा भारी (संसार के लिये) प्रसाद है। जिस वक्त वह बोलता है, लोग उसकी बातों को अपने हृदय में विचारते हैं और उसकी सहायता से अपनी उन्नति करते हैं। परंतु ऐसा मनुष्य वही हो सकता है, जो अनंत में लीन हो गया हो और जिसने चरम सीमा का त्याग करके जीवन के रहस्यमय प्रश्न को हल कर लिया हो।

पद्य का अनुवाद

जीवन, सत्य तथा भाग्य के प्रश्नों पर विचार करते-करते मुझको अंधकारमय और पेचीदा मूर्ति के दर्शन हो गए और उसी ने मुझको इन आश्चर्य-जनक तथा विस्मयकारी शब्दों में कहा था कि संसार अगर छिपा है, तो केवल अंधों के लिये, और ईश्वरीय रूप का दर्शन ईश्वर ही कर सकता है।

व्यर्थ में अंधकारमय दुःखदायी रास्तों से मैंने इसी गुह्य रहस्य को हल करने का प्रयत्न किया था। परंतु जिस वक़्त मुझको प्रेम तथा शांति का मार्ग मालूम हो गया, कोई बात छिपी न रह गई और मेरी आँखों का पर्दा दूर हो गया। उसी वक़्त ईश्वरीय दृष्टि से मैंने ईश्वर का दर्शन कर पाया था।

छठा अध्याय

साधु, संत तथा उद्धारक (सेवा-नियम)

एक पूर्ण तथा सुव्यवस्थित जीवन में से प्रेम भाव की जो झलक आती है, वही प्रेम इस संसार में जीवन का मुकुट और ज्ञान की सर्वोच्च तथा अंतिम अवस्था है।

मनुष्य की सत्यपरायणता का मापक उसका प्रेम होता है, और जिसके जीवन में प्रेम प्रधान नहीं, वह सत्य से बहुत दूर है। क्षमा-वृत्ति-रहित तथा दूसरों पर आक्षेप करनेवाले चाहे अपना धर्म सर्वोच्च ही क्यों न बतलावें, परंतु उनमें सत्य का अंश न्यूनातिन्यून होता है। पर जिनमें धैर्य है और जो शांत होकर तथा दिल में किसी प्रकार के उद्वेग को स्थान दिए बिना ही किसी बात के तमाम पहलुओं को सुनते हैं और तमाम प्रश्नों पर निष्पक्ष भाव से विचार कर निष्कर्ष निकालते हैं और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिये विवश करते हैं, सचमुच उन्हीं में पूर्ण सत्य है। बुद्धिमत्ता की अंतिम कसौटी यह है कि कोई मनुष्य कैसे जीवन बिताता है, उसके भाव कैसे हैं और परीक्षा तथा प्रलोभन के समय उसकी क्या दशा होती है। सत्य का अवतार होने की तो बहुत-से लोग डींग मारा करते हैं, परंतु वे सदैव शोक, निरुत्साह और उद्वेग के शिकार बने रहते हैं और प्रथम बार थोड़ी-सी ही परीक्षा होने पर नीचे धँस जाते हैं। अगर सत्य अपरि-वर्तनशील नहीं तो वह कुछ भी नहीं। जिस सीमा तक किसी मनुष्य के जीवन का आधार सत्य होगा, उतना ही उसमें सद्‌गुण भी होगा—उतना ही उसमें उद्दंडता तथा मनो-

कामना का अभाव और परिवर्तनशील आत्मपरता की कमी में होगी।

मनुष्य नश्वर सिद्धांतो का निश्चित कर उन्हीं को सत्य कहने लगता है। सत्य किसी सिद्धांत के रूप में नहीं रक्खा जा सकता। वह तो एक अकथनीय वस्तु है। वह बुद्धि की पहुँच के परे की वस्तु है। केवल अभ्यास से उसका अनुभव किया जा सकता है। उसकी अभिव्यक्ति तो केवल निर्मल, पवित्र हृदय और सर्वोत्तम जीवन के ही द्वारा हो सकती है।

फिर इतने मत-मतांतरों, संप्रदायों तथा दलों की निरंतर होने-वाली पिशाच-सभा में कौन कह सकता है कि किसमें सत्य है। केवल उसी में सत्य है, जिसके जीवन में सत्य है और जो सत्य-मार्ग का अभ्यस्त है। केवल उसी मनुष्य में सत्य है, जिसने अपने को जीत लिया तथा इन सब पचड़ों से दूर कर दिया है और जो भूलकर भी इन झमेलों में नहीं पड़ता, बल्कि एकांत में पूर्णतः शांत होकर स्थिर आसन लगाकर बैठ जाता है, और किसी पक्ष या झगड़े से मतलब नहीं रखता, बल्कि हरएक प्रकार की आत्मश्लाघा और दूसरों की निंदा से अपने को अलग रखकर दूसरों पर अपने अंतःकरण से पवित्र ईश्वरीय प्रेम की निःस्वार्थ वर्षा किया करता है।

समस्त अवस्थाओं में जो शांत, धीर, नम्र और दूसरों को क्षमा कराने के लिये प्रस्तुत रहनेवाला है, उसी में सत्य है। केवल शाब्दिक वाद-विवाद और पांडित्य-पूर्ण लेखों से ही सत्य का प्रतिपादन नहीं होगा; क्योंकि अगर अनंत धैर्य, अदम्य क्षमता और विश्वव्यापी उदारता से मनुष्य सत्य का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता, तो केवल शब्दों द्वारा यह सत्य उसके लिये प्रतिपादित नहीं किया जा सकता।

एकांत तथा शांति के वायुमंडल में रहकर तो उद्दंड मनुष्य का भी शांत रहना आसान बात है। उसी हद तक यदि अनुदार मनुष्यों के साथ भी दयालुता का बर्ताव किया जाय, तो उनका भी दयालु और नम्र होना आसान है। परंतु अत्यंत संकट आने पर जो धैर्य तथा शांति को कायम रख सकता हो, विपत्ति का अंत हो जाने पर भी जिसमें उच्च कोटि की शांति और सभ्यता हो, केवल ऐसा पवित्रात्मा हो—और उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं—निष्कलंक सत्य का अधिकारी कहा जा सकता है। इसका कारण केवल यही है कि जिसमें ईश्वरीय सत्ता आ गई है, केवल उसी में ये उच्च गुण भी हो सकते हैं। और जिसने सर्वोत्तम बुद्धि को प्राप्त कर लिया है, केवल वही इन अवस्थाओं को संसार के सामने ला भी सकता है। जिसने अपनी उद्दंड तथा स्वार्थमय प्रकृति को छोड़ दिया है और सर्वोच्च ईश्वरीय नियम का अनुभव प्राप्त कर अपने को तद्रूप बना लिया है, केवल उसी में ये गुण आ सकते हैं।

इसलिये सत्य के विषय में व्यर्थ का उद्दंडता-पूर्ण वाद-विवाद छोड़कर मनुष्य को उन बातों को सोचना, कहना और करना चाहिए, जिनसे चित्तैक्य, शांति, प्रेम तथा सद्भावना का आविर्भाव हो। उनको अपने हृदय के गुणों का अभ्यास करना और नम्रता के साथ दिल लगाकर यत्न-पूर्वक सत्य को तलाश करना चाहिए; क्योंकि यही सत्य मनुष्य के हृदय से पापों तथा त्रुटियों को निकालता है और मनुष्य के हृदय को नष्ट करनेवाली बातों से बचाता है। और जिन बातों से सांसारिक दुःखोद्विग्न आत्माओं का मार्ग अंधकारमय होता है, उनको भी अगर कोई दूर कर सकता है, तो वह सत्य ही है।

एक ही विश्वव्यापी महान् नियम है, जो विश्व की नींव और आधार है, और वह प्रेम का नियम है। भिन्न-भिन्न देशों में और भिन्न-भिन्न युगों में लोगों ने इसको भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है।

परंतु दिव्य चक्षु से देखने पर पता चलता है कि सब नामों के पीछे वही एक ही अभिन्न नियम है । नाम, धर्म तथा शरीर तो नष्ट हो जाते हैं, परंतु यह प्रेम का नियम क़ायम ही रहता है । इस नियम को मान लेना और इसके साथ एकदिल हो जाना अमर, अदृश्य और अविनाशी होना है ।

आत्मा इस नियम का अनुभव करने का उद्योग करती है; इसी कारण मनुष्य बराबर जनमता, दुःख भोगता और मरता है । परंतु जिस वक़्त इसका अनुभव हुआ, उसी वक़्त दुःख दूर भागा, ख़ुदी का अंत हुआ और इस शारीरिक जीवन तथा मृत्यु का भी अंतिम दिन आया; क्योंकि ज्ञान हो जाने पर यह मानवी चेतना नित्य भगवान् का रूप हो जाती है ।

यह नियम तो किसी पुरुष की इच्छा के बिलकुल ही परे की बात है और इसका सर्वोत्तम प्रकट रूपांतर सेवा है । जिस समय पवित्र हृदय को सत्य का अनुभव हो जाता है, उसी वक़्त उसे अंतिम, सबसे भारी और सर्वोपरि पवित्र त्याग की भी आकांक्षा होती है । और उसको इस सत्य से प्राप्त सुख को त्यागना होता है । केवल इस त्याग के ही कारण पवित्र, मुक्त आत्मा मानव शरीर लेकर मनुष्यों में जीवन बिताने आता है । नीचातिनीच तथा तुच्छातितुच्छ के साथ रहने में भी वह संतुष्ट रहता है और मनुष्य-जाति का सेवक ही कहलाना उसको अच्छा लगता है । जो सर्वोच्च नम्रता एक उद्धारक में पाई जाती है, वही परमात्मा की मुहर है । जिसने अपने व्यक्तित्व को मिटा दिया है और सीमातीत, नित्य तथा व्यक्ति-भेद-भाव-रहित प्रेम का एक जागता ज्वलंत रूप अपने को बना लिया है, आगामी संतान केवल उसी की पवित्र अपरिमित पूजा करती है, दूसरों की कदापि नहीं । जिसमें केवल अपने व्यक्तित्व को मिटानेवाली ही नहीं, बल्कि दूसरों पर निस्स्वार्थ प्रेम की वर्षा करनेवाली ईश्वरीय पवित्र

नम्रता को प्राप्त कर लिया है, केवल वही सर्वोच्च शासन पर आरूढ़ होगा और मनुष्य के हृदय में उसी का आध्यात्मिक साम्राज्य होगा।

तमाम बड़े-बड़े आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने शारीरिक भोग-विलास, सुविधा और पारितोषिक को लात मार दी है, सांसारिक शक्ति को भी ठोकर लगाई है, स्वयं सीमातीत विशुद्ध जीवन बिताया है, और इसी की शिक्षा दूसरों को दी है। उनकी जीवनियों तथा उपदेशों का मिलान कीजिए, तो आपको वही सादगी, वही त्याग, वही नम्रता, वही प्रेम और वही शांति प्रत्येक के जीवन तथा शिक्षा में एकसी मिलेगी। उन लोगों ने उन्हीं नित्य सिद्धांतों की शिक्षा दी है, जिनके अनुभव से तमाम बुराई दूर हो जाती है। जिनको संसार ने मनुष्य-जाति का उद्धारक मानकर पूजा है, वे सब उसी एक सर्वव्यापी नित्य नियम की एक-सी मूर्ति थे। और चूँकि वे ऐसे थे, इसलिये न तो उनमें आत्मश्लाघा थी, न उद्दंडता। और चूँकि उनको कोई व्यक्तिगत राय या विशेष सिद्धांत नहीं होता था, इसलिये उसकी रक्षा और दीक्षा के लिये भी उनको लड़ना नहीं पड़ता था। सुतरां उन लोगों ने कभी दूसरों को नया धर्म बतलाने या उनको अपने धर्म पर लाने का उद्योग नहीं किया।

सर्वोच्च साधुता तथा सर्वोपरि सिद्धि के प्राप्त हो जाने पर उनका केवल एक ही उद्देश्य था कि मनसा, वाचा, कर्मणा वे उसी साधुता को दिखलाकर प्राणी-मात्र का उद्धार करें। निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण मनुष्य के बीच में उनका स्थान समझना चाहिए और अपनी वृत्तियों के दास बने मनुष्यों की मुक्ति के लिये वे उदाहरण तथा आदर्श-स्वरूप काम करते हैं।

अपने ही स्वार्थ में डूबे हुए मनुष्य, जिनकी समझ में पूर्ण निस्स्वार्थ-साधुता का समावेश नहीं हो सकता, केवल अपने विशेष उद्धारक (पैग़ंबर) को छोड़कर किसी दूसरे में ईश्वरीय सत्ता

मानते ही नहीं। इस प्रकार वे आपस में जातीय घृणा और सिद्धांत के झगड़े पैदा कर देते हैं। अपने विचारों की उत्तेजना के साथ पुष्टि करने में वे दूसरों को काफ़िर और नास्तिक बतलाते हैं। इसका फल यह होता है कि स्वयं उनके उपासना के पात्रों के जीवन तथा उपदेश की पवित्र महत्ता और सौंदर्य कम-से-कम उनके लिये तो मिट्टी में मिल जाता है। सत्य को कोई क़ैद करके नहीं रख सकता। वह किसी ख़ास आदमी, जाति या संप्रदाय की संपत्ति होकर नहीं रह सकता। ज्यों ही इसमें किसी व्यक्ति का संबंध आया कि सत्य का नाश हुआ।

साधु, संत और उद्धारक सबका एकसाँ बड़प्पन इसी में है कि उन्होंने पूर्ण नम्रता और विनय को प्राप्त कर लिया है और उनमें अत्यंत ही उत्कृष्ट श्रेणी का त्याग तथा निस्स्वार्थता आ गई है। सब बातों को, यहाँ तक कि अपने व्यक्तित्व को, छोड़ देने पर उनके सभी कार्य पवित्र और स्थायी होते हैं; क्योंकि उनमें किसी किस्म के अहंभाव की बू तक नहीं होती। वे देते जाते हैं, परंतु लेने का उनमें कभी ख़याल ही नहीं होता। बिना भविष्य से आशा किए या अपने पूर्व जीवन पर पश्चात्ताप किए वे कार्य करते जाते हैं और पुरस्कार की अभिलाषा नहीं रखते।

खेत को जोतकर ज़मीन ठीक करने के बाद जब किसान उसमें बीज डाल आता है, तो वह समझ लेता है कि जो कुछ मुझसे संभवतः हो सकता था, मैंने कर दिया। अब वह प्रकृति पर ही भरोसा करता है कि समय आने पर मुझको अच्छी फ़सल मिल जायगी। वह यह भी जानता है कि चाहे मैं जितनी हाय-हाय करूँ या आशा रक्खूँ, परंतु इससे जो कुछ होनेवाला होगा, उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। ठीक इसी तरह से जिसने सत्य का अनुभव कर लिया है, वह चारो ओर साधुता, पवित्रता, प्रेम और शांति का बीज बोता

चला जाता है। वह न तो किसी प्रकार की आशा रखता है और न फल की परवा करता है; क्योंकि वह यह जानता है कि जो प्रधान और सर्वोपरि ईश्वरीय नियम है, वह तो समय आने पर अपनी फसल स्वयं ही तैयार कर देगा और उस नियम में रक्षा या नष्ट करने का एक सा ताक़त है।

पूर्णतः निःस्वार्थ हृदय की दिव्यता और शुद्धता को न जानने के कारण मनुष्य केवल अपने ही उद्धारक को एक विशेष अलौकिक व्यक्ति समझता है और वस्तुओं के गुणों से उसको पूर्णतः मुक्त और परे समझता है। उसकी यह भी धारणा होती है कि सदाचार की विशिष्टता में इस सीमा तक मनुष्य कभी पहुँच ही नहीं सकता और उसके बराबर नहीं हो सकता। यह जो अविश्वास फैल रहा है कि मनुष्य सम्पूर्ण ईश्वरीय दिव्यता नहीं प्राप्त कर सकता, उद्योग को एकदम बंद कर देता है और मनुष्यों की आत्मा को पाप और दुःख में लपेटे रखने के लिये एक मज़बूत रस्से का काम करता है। ईसा में बुद्धि ने प्रवेश किया और कष्ट को सहन करके ही वह सद्गुण-संपन्न बने थे। जैसे वे थे, वह स्वयं वैसे बने थे। जो कुछ बुद्ध भगवान् थे, वह भी अपने कर्त्तव्यों के फल थे। आत्मत्याग में निरंतर उद्योग और अटूट धैर्य के ही कारण प्रत्येक पवित्र मनुष्य अपनी उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ था। एक बार इसको मान लीजिए; एक बार अनुभव कर लीजिए कि अप्रमत्त उद्योग तथा आशापद्ध अनवरत चेष्टा से आप अपनी नीच प्रवृत्तियों को त्याग सकते हैं; फिर जो सिद्धि आपको प्राप्त होगी, वह एक महान् और सुन्दकारी सिद्धि होगी। बुद्ध भगवान् ने अनुष्ठान और संकल्प किया कि जब तक मैं पूर्णावस्था न प्राप्त कर लूँगा, मैं अपने उद्योग में शिथिलता न आने दूँगा; और उन्होंने अपना उद्देश्य पूरा कर लिया।

साधुओं, महात्माओं और संतों ने जो कुछ किया, वह आप भी कर सकते हैं। परंतु हाँ, यदि आप भी उन्हीं के बताए हुए रास्ते पर चलें और उसी मार्ग का अवलंबन करें, जिसका अवलंबन उन लोगों ने किया था; और वह मार्ग है निस्स्वार्थ सेवा तथा आत्म-त्याग का।

सत्य एक बहुत ही आसान बात है। उसका तो यही कहना है कि आत्मत्याग कर दो, मेरे पास आ जाओ और जघन्य बनानेवाली वस्तुओं से अपने को दूर रक्खो, मैं तुमको शांति दूँगा, विश्राम दूँगा। इस पर टीका-टिप्पणियों का जो पहाड़ खड़ा कर दिया गया है, वह सत्य के मार्ग की तलाश में लगे हुए हृदय को इससे वंचित नहीं रख सकता। इसमें विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं। विद्वत्ता न होने पर भी सत्य जाना जा सकता है। यद्यपि भ्रम में पड़े स्वार्थी पुरुषों के द्वारा कई तरह से रूपांतर करके इसको छिपाने का यत्न किया जाता है, परंतु तब भी सत्य की सुंदर सरलता और स्पष्ट निर्मलता पहले-सी ही पवित्र और चमकदार बनी रहती है। स्वार्थ-रहित हृदय इसमें प्रवेश कर इसकी उज्ज्वल कीर्ति का आनंद उठाता है। जटिल कल्पनाओं और तत्त्व-ज्ञान की रचना से सत्य का अनुभव नहीं होता, बल्कि अंतःकरण को पवित्र बनाने तथा निर्मल जीवन का मंदिर निर्माण करने से ही सत्य का अनुभव होता है।

इस पवित्र मार्ग में प्रवेश करनेवाला सबसे पहले अपने मनोवेग को रोकता है। यह एक गुण है और साधुता का आरंभ यहीं से होता है। दिव्यता प्राप्त करने के लिये साधुता पहली सीढ़ी है। बिल-कुल ही सांसारिक मनुष्य अपनी समस्त तृष्णाओं तथा इच्छाओं को तृप्त करता है; और जिस हद तक देश का नियम उसको विवश करता है, केवल उसी हद तक वह अपने को बुरी बातों से रोकता

है, उससे अधिक नहीं। पुण्यात्मा अपने मन के वेग को रोकता है। साधु तथा सत्यपरायण अपने हृदय रूपी क़िले में ही सत्य के शत्रु पर आक्रमण करता है और अपने को तमाम स्वार्थमय तथा अपवित्र विचारों से पृथक् रखता है। इसके साथ-साथ पवित्र आत्मा वही है, जो मनोवेग और अपवित्र विचारों से सर्वथा मुक्त है और जिसके लिये पवित्रता तथा साधुता उतनी ही प्राकृतिक हो गई है, जैसे सुगंध और सुंदर रंग पुष्प के लिये प्राकृतिक गुण हैं। पवित्र आत्मा में ईश्वरीय बुद्धि होती है। केवल वही सत्य को पूर्णरूपेण जानता है। अनंत, स्थायी, शांति तथा विश्राम में उसी ने प्रवेश भी किया है। उसके लिये बुराइयों का अंत हो गया है। ईश्वरीय विश्वव्यापी प्रकाश के सामने उनका नाश हो गया है। पवित्रता बुद्धिमत्ता का एक लक्षण है। कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा था—

(पद्यानुवाद) नम्रता, सत्य-परायणता, अहिंसा, धैर्य तथा इज़्ज़त बुद्धिमानों का आदर तथा भक्ति, पवित्रता, निरंतर ऐक्य, आत्म-व्यवस्था, इंद्रिय-जन्य सुखों से घृणा, आत्मत्याग, इस बात का ज्ञान कि जनमना, मरना, वृद्ध होना, पाप करना तथा दुःख में वेदना होना अनिवार्य है, ...सुख-दुःख में सर्वदा शांत रहना, महान् पुरुष तक पहुँचने के लिये अनुष्ठानमय उद्योग और इस बात को समझने की बुद्धि होना कि इस ईश्वरीय ज्ञानावस्था तक पहुँचने में क्या लाभ है, मेरे प्यारे सखा, यही बुद्धिमानी है; और जो कुछ इसके विपरीत है, वह अज्ञानता है।

चाहे कोई झोपड़ियों में रहता हो, चाहे उस पर संपत्ति और शक्ति की वर्षा होती हो, चाहे वह उपदेश देता फिरता हो या उसको कोई भी न जानता हो, परंतु जो लगातार अपने स्वार्थ-परता के भावों को दूर भगाने का यत्न करता है और उसके स्थान पर सर्वव्यापी प्रेम को स्थापन करना चाहता है, वही सच्चा साधु और महात्मा है।

एक विषयासक्त के लिये, जो अभी उच्च भावों की ओर अग्रसर होने लगा है, एसिसी के महात्मा फ्रैंसिस (St. Francis of Assisi) या विजयी महात्मा एंटोनी (Antony) ही एक कीर्ति-भण्डार तथा चकाचौंध करनेवाले मालूम होंगे। इसी तरह से एक ब्रह्मज्ञ, जो पवित्र और शांत रूप मे बैठा हुआ है, जिसने दुःख-दारिद्र्य को जीत लिया है, पश्चात्ताप और विषाद जिसको दुःखित नहीं कर सकते और जिसके लिये कोई वस्तु प्रलोभन की ही हो नहीं सकती, एक ऐसा ब्रह्मज्ञ भी साधुवृत्तिवालों के लिये मुग्ध करनेवाला नज़ारा होगा। लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी जिस वक्त एक उद्धारक, जिसने अपनी दैवी शक्ति को मनुष्य-मात्र के दुःख दूर करने और मनोकामना पूरी करने में ही लगा दिया है, और जो अपने ज्ञान का परिचय निष्काम कर्म करके देता है, उस ब्रह्मज्ञ के सामने आता है, तो वह ब्रह्मज्ञ भी उसकी ओर खिंच जाता है।

सच्ची सेवा यही है कि दूसरों के प्रेम में अपने को भुला दे और सारे जगत् के उद्धार के लिये काम करने ही में लीन हो जाय। हे अभिमानी! हे मूढ़! जो तू यह सोचता है कि तेरे इतने अधिक काम तुझको बचा देंगे, जो तू भ्रम की ज़ंजीर में बँधा होने से दर्प के साथ अपनी पीठ आप ठोंकता है, अपने कार्य और अपने बहुत-से त्यागों की डींग हाँकता है और अपना ही बड़प्पन सब जगह दिखलाना चाहता है, तो तुझको समझ रखना चाहिए कि चाहे तेरी कीर्ति सारे संसार में छा जाय, परंतु तब भी ये तेरे सभी काम ख़ाक में मिल जायँगे और तू सत्य-साम्राज्य के एक नाचीज़ तिनके से भी हेय तथा तुच्छ समझा जायगा।

केवल निष्काम भाव से ही किया हुआ कार्य स्थायी रह सकता है। अपने लिये किया गया काम शक्ति-हीन तथा अनित्य होता है।

जहाँ पर अपने कर्तव्य का पालन निस्स्वार्थ भाव से तथा प्रसन्नता के साथ त्याग-पूर्वक किया जाता है, चाहे वह कर्तव्य कितना ही तुच्छ हो, वहीं पर आप सेवा करते हैं, और आपका वही एक ऐसा काम है, जो स्थायी रहेगा। परंतु काम चाहे कितना ही बड़ा हो और उसमें देखने से पूरी सफलता भी मालूम होती हो, परंतु यदि वह खुदग़र्ज़ी के कारण किया गया है, तो वह टिकता नहीं; और सेवा-धर्म की अज्ञानता भी इसी को कहते हैं।

यह दुनिया के लिये छोड़ दिया गया है कि वह नितांत निस्स्वार्थता का महान् तथा पवित्र पाठ सीखे। प्रत्येक युग में साधु, ब्रह्मज्ञानी तथा उद्धारक वे ही लोग हुए हैं, जो इस कार्य के आगे माथा नवाते थे और इसको सीखकर इसी में अपना जीवन व्यतीत करते थे। संसार के सभी धर्मग्रंथ केवल एक इसी पाठ को सिखाने के लिये बनाए गए हैं, और तमाम धर्मोपदेशकों ने इसी मंत्र को दोहराया है। यह सांसारिक स्वार्थमय मार्गों में ठोकर खाते हुए मनुष्यों के लिये, जो इसको घृणा की दृष्टि से देखते हैं, एक ऐसी सरल बात है कि उस पर उनका ध्यान ही नहीं जाता।

हृदय को शुद्ध बना लेने पर सब धर्मों का अंत हो जाता है। ईश्वरीय सत्ता प्राप्त करने के लिये शुद्ध, पवित्र हृदय पहली सीढ़ी है। इस महत्ता को ढूँढ़ने के लिये सत्य तथा शांति के ही मार्ग का अवलंबन करना होगा। और जो कोई इस मार्ग पर चलना आरंभ कर देगा, वह तुरंत उस अमरता को प्राप्त होगा, जो मनुष्य को जीवन-मरण से मुक्त करनेवाली होती है; और उसको यह भी पता चल जायगा कि इस संसार में जो ईश्वरीय संपत्ति-शास्त्र है, तुच्छ-से-तुच्छ उद्योग को भी स्थान दिया जाता है।

कृष्ण, गौतम तथा ईसा मसीह को जो दैवी शक्ति थी, वह उनकी आत्मत्याग-जन्य सर्वोच्च कीर्ति थी। और इस मर्त्यलोक तक

भौतिक संसार में प्रत्येक मनुष्य की यात्रा का यही (अर्थात् दिव्या-वस्था) उद्देश्य है। परंतु जब तक प्रत्येक आत्मा ऐसी दिव्य नहीं हो जाती और अपनी ईश्वरीय सत्ता का आनंदप्रद अनुभव नहीं कर लेती, तब तक संसार की यात्रा का अंत नहीं होता।

पद्य का अनुवाद

दुर्जय युद्धों को जीतकर उच्च आशा करनेवाले को ही कीर्ति का मुकुट प्राप्त होता है। जिसने महान् कार्य किए हैं, उसी को वृद्धावस्था में उज्ज्वल यश प्राप्त होता है। स्वर्णमय लाभकारी कार्य करनेवाले को असली संपत्ति प्राप्त होती है, और प्रतिभाशाली मस्तिष्क से काम करनेवाले को विख्याति प्राप्त होती है। परंतु जिसने प्रेम के वशीभूत होकर स्वार्थपरता तथा भ्रम के प्रतिकूल रक्तपात किए बिना ही युद्ध करने में अपने को त्यागी बना दिया है, उसके लिये इससे भी बढ़कर कीर्ति प्रतीक्षा किया करती है। जो कोई स्वार्थ के अंधे उपासकों की निंदा के बीच में कंटक-मुकुट धारण करता है, उसकी कीर्ति और यश इससे भी उज्ज्वल होते हैं। मनुष्य के जीवन को मधुर बनाने के लिये जो सत्य तथा प्रेम-मार्ग का अवलंबन करने के लिये पूर्णतः यत्नशील होता है, उस पर इससे भी अधिक पवित्र संपत्ति की वर्षा होती है; और जो मनुष्य-मात्र की अच्छी सेवा करता है, उसको अनस्थायी विख्याति के बदले में महाज्ञान, शांति, सुख और स्वर्गीय ख्याति का कटिबंध मिलता है।

सातवाँ अध्याय

पूर्ण शांति की सिद्धि

बाह्य जगत् में निरंतर परिवर्तन, अशांति और झगड़ा-फ़साद हुआ करता है। समस्त वस्तुओं के अंतःकरण में निश्चल शांति होती है। इसी गहरी निश्चलता की अवस्था में नित्य ईश्वर का निवास-स्थान है।

मनुष्य की भी यही द्वैतावस्था है। ऊपरी परिवर्तन तथा अशांति और दूसरी ओर शांति का गहरा अनश्वर स्थान भी उसी में पाया जाता है। जिस तरह से महासागर में कुछ गहराई के बाद ऐसी जगहें होती हैं, जहाँ पर ख़ौफ़नाक-से-ख़ौफ़नाक तूफ़ान का भी असर नहीं पहुँच सकता, इसी तरह से मनुष्य के हृदय में भी शांति का पवित्र नीरव स्थान है, जिसको विषाद तथा पाप कभी हिला नहीं सकते। इस स्थान तक पहुँच जाना और इसका हर क्षण ध्यान रखकर जीवन बिताना ही शांति प्राप्त करना है।

बाह्य जगत् में दंगा-फ़साद का राज्य है, परंतु विश्व के अंतःकरण में अभंग एकता का साम्राज्य है। भिन्न-भिन्न मनोवेगों तथा विषादों से खिन्न होने पर मनुष्य की आत्मा पुण्यमय अवस्था की एकता की ओर अंधी बनी बढ़ती जाती है। इसी दशा को पहुँचना और इसी के ज्ञानाधार पर जीवन बिताना शांति का अनुभव प्राप्त करना है।

घृणा ही मनुष्य के जीवन को एक दूसरे से पृथक् बनाती है, अभियोग का बीज बोती है, और राष्ट्रों को क्रूर युद्ध में झोंक देती है। परंतु तब भी मनुष्य, यद्यपि वह नहीं समझता कि ऐसा क्यों हो रहा है, पूर्ण प्रेम की छाया में ही थोड़ा-बहुत विश्वास रखता है।

इसी प्रेम को सुलभ बनाकर इसी के आधार पर जीवन बिताना ही शांति का अनुभव करना है।

अंतःकरण की यही शांति, यही मूकावस्था, यही एकस्वरता, यही प्रेम स्वर्ग का साम्राज्य है। परंतु इसको प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है; क्योंकि बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं, जो अपनापन या खुदी छोड़कर छोटे बालकों का-सा बनना पसंद करते हैं।

स्वर्ग का द्वार बड़ा ही संकीर्ण और छोटा है। संसार के व्यर्थ भ्रमों में पड़े अंधे मूढ़ इसको नहीं देख सकते। परंतु स्पष्टदर्शी मनुष्य भी जो इस मार्ग को जान लेते हैं और उसमें प्रवेश करना चाहते हैं, इस द्वार को बंद और रुँधा हुआ पाते हैं, जिसको खोलना सहज नहीं। अहंकार, मनोकामना, लालच और कामातुरता इसकी भारी अगरियाँ (बिलाइयाँ) हैं। मनुष्य शांति-शांति कहकर चिल्लाता है; परंतु शांति मिलती नहीं दिखलाई देती। बल्कि इसके विपरीत अशांति, दंगा-फ़साद और विद्वेष ही नज़र आता है। इस बुद्धि से पृथक् जो स्वार्थत्याग से विलग नहीं की जा सकती, वास्तविक और स्थायी शांति नहीं हो सकती।

सामाजिक सुविधा, स्वेच्छा की पूर्ति और सांसारिक विजय से जो शांति प्राप्त होती है, वह टिकाऊ नहीं होती और अग्निमय परीक्षा के समय वह कपूर की तरह उड़ जाती है। केवल स्वर्गीय शांति ही प्रत्येक परीक्षा के समय टिक सकती है और केवल निस्स्वार्थ हृदय ही उस स्वर्गीय शांति का अनुभव कर सकता है।

केवल पवित्रता ही अमर शांति है। आत्म-शासन इसका मार्ग है और बुद्धि का प्रतिक्षण बढ़ता हुआ प्रकाश यात्री के मार्ग में पथ-प्रदर्शक का काम करता है। धर्म के मार्ग पर चलना आरंभ करते ही शांति कुछ अंश में प्राप्त हो जाती है; परंतु पूर्ण शांति का अनुभव तभी हो पाता है, जब पूर्णतया बेदाग़ जीवन बिताने में अपनेपन का लोप हो जाता है।

बुदी के प्रेम और जीवन की लालसा को जीत लेना, हृदय से गहरी जड़ जमाए हुए मनोराग को निकाल भगाना और अंतःकरण के फसाद को शांत कर देना ही शांति प्राप्त करना है।

ऐ मेरे प्यारे पाठको, अगर तुमको ऐसे प्रकाश को प्राप्त करना अभीष्ट है जो कभी धुँधला न पड़े, अगर तुमको अनंत सुख भोगना मंज़ूर है और यदि तुमको अविचल शांति का अनुभव करना ही अभीष्ट है, अगर तुम्हारी इच्छा है कि तुम एक ही बार सदैव के लिये अपने पापों, अपने दुःखों, अपनी चिंताओं और अपने झंझटों को तिलांजलि दे दो, यानी मेरा कहना है कि अगर सचमुच ही तुम इस मुक्ति को प्राप्त करना चाहते हो और यह अत्यंत ही यशस्वी जीवन बिताना तुमको अभीष्ट है, तो तुम अपने को जीत लो। अपनी प्रत्येक कामना, अपने हरएक विचार या मनोवेग को तुम उस दैवी शक्ति का पूर्ण आज्ञाकारी बना दो, जो तुम्हारे अंतःकरण में वर्तमान है। इसके अतिरिक्त शांति प्राप्त करने का दूसरा मार्ग नहीं। और यदि तुम इस रास्ते पर चलना स्वीकार नहीं करते, तो तुम्हारे तमाम दान और यज्ञ निष्फल जायँगे और उनसे कोई लाभ न होगा। फिर न तो देवता ही, न स्वर्ग की परियाँ ही तुम्हारी सहायता कर सकेंगी। पुनर्जीवन का स्वच्छ कांतिमय पत्थर केवल उसी आदमी को मिलता है, जिसने अपने को जीत लिया है। इस पत्थर पर नवीन और अमिट नाम लिखा होता है। थोड़े समय के लिये बाह्य जगत् से दूर हट जाइए, इंद्रियजन्य सुख, बुद्धि के तर्क-वितर्क, दुनिया के झगड़े और उत्तेजना को दूर छोड़ दीजिए, अपने को अपने हृदयांतर्गत हृदय के मंदिर में ले जाइए। स्वार्थमय इच्छाओं की अधार्मिक कार्रवाइयों तथा हमले आक्रमण से मुक्त हो जाने पर आपको पवित्र शांति, परमानंददायी विश्राम तथा गहरी निश्शंकता का अनुभव होगा। और यदि आप इस पवित्र स्थान में

थोड़े समय के लिये रुक जायँ और ध्यान में मग्न हो जायँ, तो सत्य की निर्भ्रांत आँखें आपके अंदर खुल जायँगी और आप वस्तुओं को उनकी वास्तविक अवस्था में देखने लगेंगे। आपके अंदर जो यह आपका पवित्र स्थान है, वहाँ आपकी नित्य और वास्तविक आत्मा है। यही आपमें ईश्वरीय सत्ता है। जिस समय आप अपने को इस सत्ता के रूप में बना लेंगे, केवल उसी वक्त यह कहा जा सकेगा कि आपकी मानसिक अवस्था अब ठीक हो गई। यहाँ शांति का निवास-स्थान, बुद्धि का मंदिर, और अमरता का विश्राम-स्थान है। इस अंतःकरण की विश्रामदायी अवस्था या इस दर्शनीय के स्थान से दूर हो जाने पर, सच्ची शांति और ईश्वरीय ज्ञान कदापि संभव नहीं। और यदि आप इस विश्राम-स्थान में एक क्षण के लिये भी रह सकते हैं या एक घंटे या एक दिन के लिये भी रह सकते हैं, तो यह भी संभव है कि आप इसी अवस्था में सदैव रह सकें।

आपके तमाम दुःख, विषाद, भय और चिंता आपके ही कारण हैं। आप चाहे उनको अपनाए रह सकते हैं या उनको छोड़ सकते हैं। अपनी ही इच्छा से आप अशांत हैं और अपनी इच्छा से आप स्थायी शांति भी प्राप्त कर सकते हैं। आपके पापमय कार्यों को आपके बदले कोई दूसरा नहीं छोड़ेगा, बल्कि स्वयं आपको उन्हें छोड़ना होगा। संसार का सबसे भारी उपदेशक इससे अधिक कुछ भी नहीं कर सकता कि वह स्वयं सत्य मार्ग का अवलंबन करे और आपको भी वैसा ही करने के लिये रास्ता बतलाये। परंतु तब भी स्वयं आपको ही उसी रास्ते पर चलना होगा। केवल अपने ही उद्योगों से और अपनी आत्मा के बंधनों को त्यागने तथा शांति की विनाशक बातों को छोड़ने से आपको स्वतंत्रता तथा शांति मिल सकती है।

दिव्य शांति तथा परमानंद के दैवी दूत सदैव आपके पास हैं।

यदि आप उनको देखते और सुनते नहीं हैं और उनके साथ जीवन नहीं बिताते, तो इसका कारण इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि आप अपने को स्वयं उनसे दूर रखते हैं और अंतःकरण के अंतर्गत बुरी भावनाओं को उनसे बेहतर समझते हैं। जो कुछ आप बनना चाहते हैं, जो कुछ आप अपने को बनाना चाहते हैं और जैसा रूप धारण करना आपको पसंद है, आप वैसे ही हैं। आप अपने को पवित्र बनाना आरंभ कर सकते हैं; और फिर शांति का अनुभव आप-ही-आप हो जायगा। या आप अपने को पवित्र बनाने से इनकार भी कर सकते हैं; और इसका फल यह होगा कि आप सदैव दुःखी बने रहेंगे।

फिर आप दूर हट जाइए। जीवन की कुटिल भावनाओं और ताप से बाहर निकल आइए। हृदय की जलती और जलानेवाली इच्छाओं को दूर भगाकर अंतःकरण के शांतिदायी स्थान में आपको प्रवेश करना चाहिए। वहाँ पर जो शांति की शीतल वायु चलेगी, वह आपको पूर्णतः नवीन बना देगी; आपमें पुनः शक्ति तथा शांति का संचार हो उठेगा।

पाप और व्यथा के झोंकों से बाहर निकल आइए। जब कि शांतिमय स्वर्ग इतना निकट है, तो फिर इतना दुःखित होने और झगड़ों के मारे इधर-उधर ठोकर खाने से क्या लाभ।

अपने स्वार्थ तथा आत्म-तृप्ति की चाह को छोड़ दीजिए। फिर क्या है, ईश्वरीय शांति आपकी है, आपके अधिकार में है।

आपके अंदर जो पाशविक वृत्तियाँ हैं, उनका दमन कीजिए। हरएक स्वार्थमय उन्नति की भावना तथा अनमेल दुर्गुण की आवाज़ को पराजित कीजिए। अपनी प्रकृति की तमाम दूषित वृत्तियों को निकालकर उनके स्थान में पवित्र प्रेम का संचार होने दीजिए। और फिर आप देखेंगे कि आपका जीवन पूर्ण शांत जीवन है। इस तरह

पराजय और परिवर्तन करने का फल यह होगा कि इस मनुष्य-जीवन में ही आप मर्त्यलोक के काले समुद्र को पार कर उस पार जा लगेंगे, जहाँ शोक की लहरें कभी भूलकर भी नहीं टकरातीं और जहाँ पर पाप और दुःख तथा अंधकारमय अनिश्चितता का दौरा कभी हो ही नहीं सकता। इस समुद्र के किनारे पवित्र, उदार, जाग्रत् जीवन बिताने और अपने को अपने वश में रखने से तथा अनंत प्रसन्नता को अपने चेहरे पर स्थान देने से फल यह होगा कि आपको इस बात का अनुभव हो जायगा कि—

"न तो यह आत्मा कभी जन्मी थी, न कभी इसका अंत ही होगा।

कोई ऐसा समय नहीं था जब यह आत्मा उपस्थित नहीं थी। आदि और अंत तो केवल स्वप्न हैं।

यह आत्मा जन्म-मरण-रहित और सदैव अपरिवर्तनशील रहती है। यद्यपि आत्मा का भवन मृतक मालूम होता है, परंतु मृत्यु ने इसको छुआ तक नहीं है।"

उस समय आपको मालूम हो जायगा कि पाप, दुःख और असली विषाद का वास्तविक अर्थ क्या है, और यह भी मालूम हो जायगा कि इनका होना ही बुद्धि की प्राप्ति है। इसके अतिरिक्त जीवन का कारण और फल भी आपको मालूम हो जायगा।

इस अनुभव के साथ ही आप विश्राम में प्रवेश करेंगे, क्योंकि अमरता का प्रसाद यही शांति है। यह अपरिवर्तनशील प्रसन्नता, यह परिष्कृत ज्ञान और परिमार्जित बुद्धि तथा अटल प्रेम ही इस अमरता के फल हैं, और केवल इन बातों का जानना ही पूर्ण शांत अवस्था का प्राप्त करना है।

पद्य का अनुवाद

हे मनुष्यों को सत्योपदेश करने की अभिलाषा रखनेवाले! क्या आपने आशंका की मरुभूमि को तय कर लिया है? क्या विषादाग्नि ने आपको पवित्र कर दिया है? क्या क्रूरता ने आपके मानवी हृदय से अपनी ही रायवाले शैतान को दूर निकाल दिया है? क्या इतनी उदारता आ गई? क्या आपकी आत्मा इतनी स्वच्छ हो गई कि अब कभी उसमें झूठे विचारों को स्थान ही न मिलेगा?

हे प्राणीमात्र को प्रेमादेश करने की उत्कट इच्छा रखनेवाले! क्या आपने निराशा के भवन को लाँघ लिया है? क्या आपने शोक की रात्रि में दिल-भर रो लिया है? क्या दुःख और विषाद से आपका हृदय मुक्त हो गया है? क्या त्रुटि, घृणा और लगातार झगड़ा-फ़साद देखकर आपको करुणा हो जाती है?

हे मनुष्यों को शांति की शिक्षा देने के प्रेमी! क्या आपने दंगे-फ़साद के चौड़े समुद्र को पार कर लिया है? क्या निःशब्दता के किनारे (घाट) पर आपने जीवन की तमाम कुत्सित अवस्थाओं को छोड़ दिया है? क्या आपके हृदय से अब तमाम अभिलाषा दूर हो गईं और केवल सत्य, प्रेम और शांति ही शेष रह गए हैं?
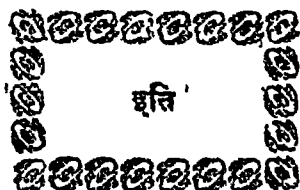
गंगा-पुस्तकमाला के कुछ आध्यात्मिक ग्रंथ

हृदय-तरंग

(चतुर्थावृत्ति)

Out from the heart का हिंदी-अनुवाद। मूल-लेखक, जेम्स ऐलेन। मन और हृदय की उन्नति पर ही मनुष्य की उन्नति अवलंबित है। इसी बात को लेखक ने बड़ी अच्छी तरह समझाया है। मूल्य ।)

किशोरावस्था

(द्वितीयावृत्ति)

पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। प्रत्येक पिता को अवश्य मँगाकर पढ़ना और अपने युवक पुत्रों के हाथ में रखनी चाहिए। जिन बुराइयों में पड़कर नवयुवक अपने यौवनकाल का सर्वनाश करते हैं, उन्हीं का इसमें बड़ी मार्मिक भाषा में वर्णन किया गया है। बचपन से जवानी, यौवनकाल का शारीरिक परिवर्तन, शिक्षा और संयम, स्वप्न-दोष और उसका निवारण, युवकों का स्वास्थ्य, युवकों का धार्मिक विचार, बड़ों का कर्तव्य आदि विषयों पर वैज्ञानिक ढंग से लिखा गया है। साथ ही एक 'मदन-दहन'-नामक कहानी भी दी गई है। वह बड़ी ही रोचक और शिक्षाप्रद है। विषय को सुगम करने के लिये स्थान-स्थान पर चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ॥=), १=)

हठयोग

(द्वितीयावृत्ति)

बाबा रामचारकजाम की लिखी हुई, इसी नाम की पुस्तक का हिंदी-अनुवाद। इसमें स्वामीजी के बनाए हुए ऐसे सरल अभ्यास हैं,

जिन्हें आप खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय कर सकते हैं। थोड़े ही अभ्यास से आपकी शारीरिक उन्नति और मनःशक्ति-प्रबलता उस मात्रा तक पहुँच जायगी, जिसका आपको स्वप्न में भी ख़याल न होगा। मूल्य १।=), सजिल्द १॥=)

मनोविज्ञान

इस पुस्तक में मनोविकारों, मानसिक वृत्तियों और मनोभावों तथा मनोवेगों का सूक्ष्म परिचय अतीव सरल एवं साधु भाषा में स्पष्टता-पूर्वक लिखा गया है। मुखाकृति से हृदय का परिचय जानने की कला सीखने के लिये इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। प्रत्येक शिक्षक और छात्र के पास इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। विषय गहन है, पर लेखन-शैली इतनी सरल और सरस कि पुस्तक मनोरंजन और शिक्षा दोनो का उत्तम साधन बन गई है। बातें बारीक हैं, रचना रोचक है। यू० पी० की सरकार ने नार्मल-स्कूलों के अध्यापकों के लिये इसे स्वीकृत भी किया है। मूल्य ॥।), सुनहरी रेशमी जिल्द १।)

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

संसार में स्वास्थ्य और शरीर की रक्षा से बढ़कर और कुछ भी महत्त्व-पूर्ण नहीं है। स्वास्थ्य-रक्षा ही जीवन का मूल-धन है। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से लौकिक सुख दुर्लभ हो जाते हैं। शारीरिक सुख तो स्वास्थ्य-रक्षा ही पर पूर्ण रूप से निर्भर है। जिसका स्वास्थ्य ठीक नहीं, वह सब तरह से संपन्न होकर भी दरिद्र और दुखी है। किंतु शरीर की भीतरी बातें जाने बिना स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती। प्रत्येक अवयव की अंदरूनी हालत जानने से स्वास्थ्य-रक्षा में बड़ी सुविधा और सुगमता होती है। इस पुस्तक में मानव-शरीर के प्रत्येक अंग की बनावट और उसकी आंतरिक अवस्था का सूक्ष्म विवेचन बड़ी अनुभवशीलता और सरलता से किया गया है। संसार में सुख की

इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक शास्त्र से परिचित होना चाहिए। यह पुस्तक शारीरिक शास्त्र का सार-मर्म निचोड़ और सर्वोपयोगी है। मूल्य ॥=), सजिल्द ॥।)

संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा

इसमें स्वास्थ्य-रक्षा के मूल-तत्त्वों की बड़ी ही सरल भाषा में विवेचना की है। यदि आप चाहते हैं कि आप और आपकी संतान सदैव नीरोग रहे, तो इस पुस्तक को मँगाकर अपने घर रखिए, और इसके अनुसार आचरण करिए। फिर देखिए, आपका स्वास्थ्य कितना सुंदर रहता है। मूल्य ॥=), सजिल्द ॥।)

जीवन का सद्व्यय

"Economy of Human Life" नाम की महत्त्व पूर्ण अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद। अनुवादक, श्रीहरिभाऊ उपाध्याय, संपादक 'त्याग-भूमि'। मूल्य १), सजिल्द १॥)

कर्म-योग

श्रीमती ओहन्गुइारा की Practical yoga नाम की पुस्तक का सुंदर और सरल भाषा में किया हुआ अनुवाद। इस विद्या के अनेक मर्मज्ञ अभ्यासियों द्वारा ख़ूब प्रशंसित। योग-मार्ग के यात्रियों के लिये एक उत्तम पथ-प्रदर्शक। सुंदर एँटिक काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य ॥), सजिल्द १)

प्राणायाम

यह पुस्तक स्वामी रामचारक लिखित 'साइंस ऑफ़् ब्रेथ' का हिंदी-रूपांतर है। प्राणायाम-जैसी कठिन क्रिया बड़ी सरल भाषा में समझाई गई है। साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी इसे एक बार पढ़कर प्राणायाम का अभ्यास कर सकता है। योगी तथा गृहस्थ सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य केवल ॥=), सजिल्द १=)

तात्कालिक चिकित्सा

मनुष्य की असावधानी तथा नियमों की अनभिज्ञता के कारण यह मनुष्य-शरीर टूटा-फूटा एवं अस्वस्थ रहता और विनाश को प्राप्त हुआ करता है। फलतः हमें प्रति-क्षण किसी सुयोग्य डॉक्टर अथवा वैद्य की आवश्यकता हुआ करती है। किंतु प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय उसकी सहायता प्राप्त करना कठिन होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी शरीर-रचना तथा उसके स्वास्थ्य-नियमों का यथोचित ज्ञान रक्खे, ताकि समय-कुसमय, डॉक्टरों अथवा अनुभवी वैद्यों की अनुपस्थिति में भी, वह अपनी, अपने कुटुंबियों की, मित्र-मंडली और अन्य प्राणियों का यथार्थ तात्कालिक चिकित्सा कर सके। यह पुस्तक इसीलिये लिखी गई है। इसकी भाषा सरल है, और चित्रों से इसका आशय समझने में और भी सुगमता हो गई है। प्रत्येक छोटे-बड़े गृहस्थ को भी इसकी एक-एक प्रति अपने यहाँ रखकर इससे लाभ उठाना चाहिए। लगभग ५०-६० चित्रों के रहते हुए भी इस उपयोगी, १५२ पृष्ठों की, सचित्र पुस्तक का मूल्य १), सजिल्द १॥)

जीवन मरण-रहस्य

इस पुस्तक में मानव-शरीर-यंत्र का सूक्ष्म वर्णन है, जिसका ज्ञान प्रत्येक प्राणी को आवश्यक है। शरीर के साथ आत्मा, मन-प्रकृति, अंतःकरण इत्यादि का वर्णन ऐसी सरल रीति से किया गया है, जिसे साधारण मनुष्य भी भली भाँति समझ और अपना शारीरिक और मानसिक विकास कर सकता है। इसे सच्चे हृदय से पढ़ने से मरण-भय की सत्ता हृदय में नहीं रह सकती। इस पुस्तक को पढ़कर अपनी आत्मा को कर्मण्य तथा निर्भीक बनाइए। मूल्य ।=)

योग की कुछ विभूतियाँ

योगी रामचारक-लिखित Fourteen Lessons in Yog

Philosophy and Oriental Occultism, का हिंदी-अनुवाद । योग की विभूतियाँ तो अनंत हैं, परंतु इस पुस्तिका में कुछ ऐसी विभूतियों का वर्णन है, जिन्हें जानकर आप अनंत लाभ उठा सकते हैं । इसमें ध्यान, समाधि और संयम इत्यादि का ऐसा सुंदर वर्णन है कि थोड़े ही अभ्यास से मनुष्य की विचित्र शक्तियों का विकास हो सकता है । हमारे कथन का सत्य तथा पुस्तक के तत्त्व पढ़ने ही से ज्ञात हो सकते हैं । पृष्ठ-संख्या १२५ ; मूल्य ॥), सजिल्द १)

योगत्रयी

योगी रामचारक-लिखित अँगरेज़ी पुस्तक Advanced course in Yogi Philosophy का छंदानुवाद । इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का संक्षेप, किंतु विशद वर्णन है । स्वामी रामचारकजी ने इसमें तीनो योगों की सापेक्षता सिद्ध की है । इसके अध्ययन से मनुष्य आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन को सफल, शुभाशा-पूर्ण और शांत बना सकता है । पृष्ठ-संख्या १०९ ; मूल्य ॥), सजिल्द १)

योगशास्त्रांतर्गत धर्म

योगी रामचारक-लिखित Advanced coursein Yogi Philosophy का छंदानुवाद । संसार में धर्म का विचित्र अनेकता है । धार्मिक मतभेदों से संसार में असंख्य अनिष्ट हुए हैं । स्वामीजी ने धार्मिक अनेकता में एकता और प्रतिकूलता में अनुकूलता दिखलाई है । इसके मनन और अध्ययन से धर्म-विषयक सारे संशय मिट जाते हैं । पृष्ठ-संख्या ६८ ; मूल्य ॥)

राजयोग अर्थात् मानसिक विकास

योगी रामचारक-लिखित अँगरेज़ी पुस्तक राजयोग अर्थात् Mental Developement का हिंदी-रूपांतर । वह शिक्षा है,

जिसके द्वारा आप अपने मानसिक कुपथ्यों और त्रुटियों को दूर करके मनः शक्ति को प्रबल तथा 'हृदय' को परमानंद-परिप्लावित कर सकते हैं। लेखक ने इसमें मन के भिन्न-भिन्न भेदों का स्पष्ट वर्णन करके आत्मोद्धार के उत्तम उपाय बतलाए हैं। इसमें अनुभव-हीनों की तरह मन को मारना या इसे ज़बरदस्ती दबा लेना नहीं बतलाया गया है। स्वामीजी ने इसमें मतवाले मन को स्वच्छंद रीति से वश में करना सिखाया है। सुंदर उपदेशों के साथ-साथ सरल भाषा में ऐसे मंत्र दिए गए हैं, जिनके मनन से वास्तविक कल्याण होगा। इसके तत्त्व पढ़ने ही से ज्ञात होंगे। पृष्ठ ३०० ; मूल्य १॥), सजिल्द २)

संसार-रहस्य अथवा अधःपतन

इसमें भौतिक और आध्यात्मिक जगत् का चित्र खींचा गया है। गार्हस्थ्य, ऐतिहासिक, जासूसी और तिलस्मी उपन्यास तो बहुतेरे लेखकों ने लिखे और प्रकाशकों ने प्रकाशित भी किए, पर आध्यात्मिक विषय पर हिंदी में अभी तक इने-गिने लेखकों ने ही लिखने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास में लेखक ने संसार के द्वंद्व पुण्य-पाप, उचित-अनुचित, यह-वह, मैं भला और तू बुरा, मैं बुद्धिमान् और तू मूर्ख— आदि ऐसे ही प्रश्नों को सुलझाकर यथा तथ्य प्रकाश डाला है। पृष्ठ-संख्या २७४ ; मूल्य १॥), सजिल्द २)